बी.एस.ओ.सी.-110

सामाजिक स्तरीकरण

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ,
इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय

विशेषज्ञ समिति

प्रो. जे.के. पुंडीर, सीएसएस विश्वविद्यालय, मेरठ	प्रो. मधुनगला एमडीयू, रोहतक	प्रो. रबीन्द्र कुमार, समाजशास्त्र संकाय, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली
प्रो. टी. कपूर, समाजशास्त्र संकाय, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली	प्रो. नीता माथुर, समाजशास्त्र संकाय, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली	प्रो. देवल के. सिंहारॉय समाजशास्त्र संकाय, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली
डॉ. किरनमई भूशी, समाजशास्त्र संकाय, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली	डॉ. आर. वाशुम, समाजशास्त्र संकाय, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली	डॉ. अर्चना सिंह, समाजशास्त्र संकाय, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली
डॉ. श्रीनिवास राव जेएनयू, नई दिल्ली		

पाठ्यक्रम समन्वयक

प्रो. रबीन्द्र कुमार,
समाजशास्त्र संकाय,
सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ
इग्नू, नई दिल्ली

पाठ्यक्रम संपादक

प्रो. रबीन्द्र कुमार,
समाजशास्त्र संकाय
सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ
इग्नू, नई दिल्ली

पाठ्यक्रम निर्माण दल

खंड/इकाई	शीर्षक	लेखक/अनुवादक
खंड 1	**स्तरीकरण का परिचय**	
इकाई 1	प्रमुख अवधारणाएं : सामाजिक स्तरीकरण का अभिप्राय और नजरिया	ईएसओ 14 से अनुकूलित
इकाई 2	सामाजिक स्तरीकरण के आधार	ईएसओ 14 से अनुकूलित
खंड 2	**स्तरीकरण के सिद्धांत**	
इकाई 3	मार्क्सवादी सिद्धांत	ईएसओ 14 से अनुकूलित
इकाई 4	वेबेरियन सिद्धांत	ईएसओ 14 से अनुकूलित
इकाई 5	प्रकार्यवादी सिद्धांत	ईएसओ 14 से अनुकूलित
इकाई 6	इंटरेक्शनल और एट्रिब्यूशनल थ्योरी	ईएसओ 14 से अनुकूलित
खंड 3	**अस्मिताएँ एवं असमानताएँ**	
इकाई 7	जाति और वर्ग	ईएसओ 14 से अनुकूलित
इकाई 8	प्रजाति और नृजातीयता	ईएसओ 14 से अनुकूलित
इकाई 9	लैंगिकृत असमानताएँ	ईएसओ 14 से अनुकूलित
खंड 4	**गतिशीलता और पुनरूत्पादन**	
इकाई 10	गतिशीलता की अवधारणा और रूप	ईएसओ 14 से अनुकूलित
इकाई 11	गतिशीलता के कारक और बल	ईएसओ 14 से अनुकूलित
इकाई 12	सांस्कृतिक और सामाजिक पुनरूत्पादन	डॉ. करूणाकर सिंह, सहायक प्रोफेसर, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

मुद्रण प्रस्तुति

श्री राजीव गिरधर
सहायक कुलसचिव (प्रकाशन)
सामग्री निर्माण एवं वितरण विभाग, इग्नू

श्री हेमन्त परीदा
अनुभाग अधिकारी (प्रकाशन) सामग्री निर्माण
एवं वितरण विभाग, इग्नू

जुलाई, 2021

© इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, 2021

ISBN:

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस सामग्री के किसी भी अंश को इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में मिमियोग्राफी (चक्र मुद्रण) द्वारा अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रमों के विषय में अधिक जानकारी विश्वविद्यालय के कार्यालय, मैदान गढ़ी नई दिल्ली-110068 से अथवा इग्नू की आधिकारिक वेबसाइट www.ignou.ac.in से प्राप्त की जा सकती है।

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की ओर से निदेशक, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ द्वारा मुद्रित और प्रकाशित ।
लेज़र टाइप सेट- राज प्रिंटर्स
मुद्रण -

विवरणिका

		पृष्ठ सं.
प्रस्तावना		
खंड 1	**स्तरीकरण का परिचय**	
इकाई 1	प्रमुख अवधारणाएं : सामाजिक स्तरीकरण का अभिप्राय और नजरिया	
इकाई 2	सामाजिक स्तरीकरण के आधार	
खंड 2	**स्तरीकरण के सिद्धांत**	
इकाई 3	मार्क्सवादी सिद्धांत	
इकाई 4	वेबेरियन सिद्धांत	
इकाई 5	प्रकार्यवादी सिद्धांत	
इकाई 6	इंटरेक्शनल और एट्रिब्यूशनल थ्योरी	
खंड 3	**अस्मिताएँ एवं असमानताएँ**	
इकाई 7	जाति और वर्ग	
इकाई 8	प्रजाति और नृजातीयता	
इकाई 9	लैंगिकृत असमानताएँ	
खंड 4	**गतिशीलता और पुनरूत्पादन**	
इकाई 10	गतिशीलता की अवधारणा और रूप	
इकाई 11	गतिशीलता के कारक और बल	
इकाई 12	सांस्कृतिक और सामाजिक पुनरूत्पादन	
सामग्री निर्माण		

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

पाठ्यक्रम प्रस्तावना

पाठ्यक्रम बीएसओसी 110: सामाजिक स्तरीकरण विद्यार्थियों को सामाजिक असमानताओं के समाजशास्त्रीय अध्ययन से परिचित कराता है। यह विद्यार्थियों को एक दूसरे के साथ अभिव्यक्ति में प्रमुख सैद्धांतिक दृष्टिकोण और सामाजिक असमानता के विविध रूपों से परिचित कराता है। यह पाठ्यक्रम चार विषयगत खंडों में विभाजित है।

खंड 1 **स्तरीकरण का परिचय** में दो इकाइयां शामिल हैं। इकाई 1 प्रमुख अवधारणाएं हैं। यह इकाई उद्विकासीय प्रक्रिया सहित सामाजिक स्तरीकरण के विभिन्न पहलुओं पर ध्यान केंद्रित करती है। यह प्रस्थिति, सम्पत्ति और सत्ता के संयोजी सिद्धांतों का भी परिचय देता है। यह कुछ वैचारिक और सैद्धांतिक समस्याओं पर चर्चा करती है।

इकाई 2 सामाजिक स्तरीकरण के आधार हैं। इस इकाई में हमने सामाजिक स्तरीकरण के विभिन्न आयामों या आधारों यानी वर्ग, शक्ति और प्रस्थिति और प्राकृतिक असमानताओं प्रजाति और नृजातीयता, आयु और लिंग जिससे सामाजिक अर्थ जुड़ा है, का चर्चा किया गया है।

खंड 2 **स्तरीकरण के सिद्धांतों** में चार इकाईयाँ शामिल हैं। इकाई 3 मार्क्सवादी सिद्धांत है और इकाई 4 वेब्रियन सिद्धांत है। इन इकाईयों में इन विचारकों ने श्रम विभाजन, वर्ग का अर्थ, वर्ग की वृद्धि, वर्गों और जीवन की संभावनाओं, प्रस्थिति इत्यादि पर इन दोनों ने जो लिखा है, इस इकाई में आपको इसी पर जानकारी मिलती है। इकाई 5 प्रकार्यवादी सिद्धांत पर केंद्रित है। इस इकाई में टॉल्कॉट पार्सन्स मूल्य मतैक्य और स्तरीकरण में एक अंतर्दृष्टि प्रदान करता है। इसके बाद इसमें डेविस मूर के सिद्धांत की बुनियादी विशेषताओं उसकी आलोचनाओं के बारे में बताया गया है। इस प्रकार यह आपको प्रकार्यवादी सिद्धांत का एक समग्र दृष्टिकोण समझाती है। इकाई 6 विशेषता बोधक और अन्योन्य–क्रियात्मक सिद्धांत पर केंद्रीत है। यह इकाई जाति की प्रारंभिक व्याख्याओं, धार्मिक और समाजशास्त्रीय व्याख्याओं के बीच अंतरों को समझाया है। इसके बाद यह घुर्ये, हट्टन और श्रीनिवास के विशेषताबोधक दृष्टिकोणों की विस्तार से जाँच करता है। इसके बाद बेली, मैरियट, मेयर और ड्यूमॉन्ट के अन्योन्य क्रियात्मक सिद्धांत प्रस्तुत किए गए हैं। यह इकाई अंततः विशेषताबोधक और अन्योन्य क्रियात्मक सिद्धांत का मूल्यांकन करती है।

खंड 3 **अस्मिताएँ एवं असमानताएँ** में तीन इकाइयाँ हैं। इकाई 7 प्रजाति ओर नृजातियता है। इस इकाई में समाजशास्त्री स्तरीकरण के रूपों के रूप में प्रजाति संबंधों के बारे में बात करते हैं। इन्हें भौतिक विशेषताओं के आधार पर धन और शक्ति तक असमान पहुँच की विशेषता है। समाजशास्त्री यह भी बताते हैं कि आत्मसात की प्रक्रिया के माध्यम से नृजातीय पहचान का गायब होना अक्सर बाधित होता है, जब प्रमुख समूह कुछ समूहों को सामाजिक लाभ के प्रवाह की अनुमति नहीं देते हैं, जिन्हें शक्तिहीन नृजातीय अल्पसंख्यक माना जाता है। यह स्थिति जातीय संघर्षों को जन्म देती है।

इकाई 8 जाति और वर्ग है। यह जाति मॉडल को समझता है और सामाजिक स्तरीकरण मे वर्ग की भूमिका की व्याख्या करता है। अनेक अध्ययनकत्ताओं ने भारतीय समाज में मौजूदा परिस्थितियों की गतिशीलता की अनदेखी करते हुए जाति समाज के

रूप में प्रचारित किया है। इस जाति को उस वर्ग व्यवस्था के तार्किक विलोम माना गया है, जो व्यक्तिवाद और विशेषरूप से पश्चिम से जुड़ा है।

इकाई 9 लैंगिकृत असमानताएँ हैं। यह लैंगिक पहचान का निर्माण है और सामाजिक नियंत्रण के एक उपकरण के रूप में शरीर का विश्लेषण करती है। यह लैंगिक पहचान के लिए अग्रणी कारकों की भी जाँच करता है।

खंड 4 **सामाजिक गतिशीलता ओर पुनर्उत्पादन** में चार इकाईयाँ हैं। इकाई 10 सामाजिक गतिशीलता की विभिन्न अवधारणाओं और रूपों का वर्णन करती है। इकाई 11 सामाजिक गतिशीलता से जुड़े विभिन्न कारकों और ताकतों के बारे में बताती है। इकाई 12 सांस्कृतिक और सामाजिक पुनर्उत्पादन से संबंधित हैं। यह मार्क्सवादी परंपरा सांस्कृतिक और सामाजिक पुनर्उत्पादन के विचार का विश्लेषण करने का प्रयास करती है, दुर्खेमियन परंपरा; नृवंशविज्ञान परंपरा; संरचनावादी परंपरा ओर सबसे विशेष रूप से और व्यापक रूप से बॉर्डियू के।

खंड 1
स्तरीकरण का परिचय

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

bdkbZ 1 i:e[k vo/kkj.kk,¡ % lkekftd Lrjhdj.k dk vfHkçk; vkj utfj;k

bdkbZ dh :ijs[kk

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्विकासीय प्रक्रिया

1.3 संयोजी सिद्धांतें

1.3.1 प्रस्थिति

1.3.2 संपदा

1.3.3 सत्ता

1.4 सामाजिक स्तरण के प्रकार

1.3.1 आयु वर्ग व्यवस्था

1.3.2 दास व्यवस्था

1.3.3 भूमि के स्वामित्व पर आधारित व्यवस्था

1.3.4 जाति व्यवस्था

1.3.5 वर्ग व्यवस्था

1.3.6 प्रजाति और नृजातीयता

1.7 अवधारणा और सिद्धांत संबंधी कुछ मुद्दे

1.7.1 वेबर का नज़रिया

1.7.2 द्वंद्वात्मक नज़रिया

1.7.3 पूंजीवाद का उदय

1.7.4 डाहरेंडॉर्फ और कोजर

1.7.5 प्रकार्यवादी सिद्धांत

1.8 सारांश

1.9 शब्दावली

1.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

1-0 mís';

इस इकाई को पढ़ लेने के बाद आपः

- समाजों और सामाजिक स्तरीकरण की उद्विकासीय रूपरेखा बता सकेंगे;

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

Lrjhdj.k dk
ifjp;

- सामाजिक स्तरीकरण के संयोजी सिद्धांतों, प्रस्थिति, संपदा और सत्ता का विवेचन कर सकेंगे;
- सामाजिक स्तरण के छह प्रकारों का वर्णन कर सकेंगे; और
- सामाजिक स्तरीकरण से जुड़ी अवधारणाओं और सिद्धांतों को स्पष्ट कर सकेंगे;

1-1 çLrkouk

सामाजिक स्तरीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसके जरिए समाज के समूहों और सामाजिक श्रेणियों को एक दूसरे से ऊंचे या निम्न दर्जे में रखा जाता है। यह प्रतिष्ठा, विशेषाधिकारों, संपदा और सत्ता की कसौटी पर उनकी सापेक्षिक स्थिति को देखकर तय किया जाता है। सामाजिक–स्तरों में पाए जाने वाले प्रदत्त या नैसर्गिक गुणों और उनके द्वारा अर्जित किये जाने वाले गुणों को हम अलग–अलग श्रेणी में रख सकते हैं। इस प्रकार प्रदत्त और अर्जित, ये दो प्रकार के पैमाने ही प्रायः सभी समाजों में विद्यमान सामाजिक स्तरीकरण के निर्धारकों के रूप में काम करने वाले मानकीय सिद्धांतों को परिभाषित करते हैं।

सामाजिक स्तरीकरण एक ऐतिहासिक प्रक्रिया भी है। एक सामाजिक संस्था के रूप में इसका उदय उद्विकास और सामाजिक विकास के एक निश्चित स्तर पर हुआ। आखेटक और भोजन संग्राहक समाज में भी सामाजिक विभेदन के अपने–अपने स्तर थे। उदाहरण के लिए कुशल शिकारी या शामन को निजी गुणों या प्रवीणताओं के कारण ऊंचा दर्जा हासिल था क्योंकि समाज उन्हें रहस्यमय या दैवीय मानता था। इसी प्रकार समाज के सदस्यों की उम्र या उनके लिंग के रूप में भी यह विभेदन रहता था। मगर उत्पादन प्रौद्योगिकी के अल्पविकसित रहने और इन समाजों की अनिश्चित और खानाबदोश प्रकृति के कारण इनकी जनसंख्या पर अंकुश लगा रहा। इसलिए इनका सामाजिक ढांचा बहुत सरल था। इसमें लोगों के बीच संप्रेषण के लिए प्रारंभिक प्रवीणता (यानी सीमित भाषायी शब्द ज्ञान), सरल प्रौद्योगिकी, आरंभिक स्वरूप में विश्वास व्यवस्थाएं और सामाजिक नियंत्रण के नियम विद्यमान थे। ऐसे समाजों ने जरूरत से ज्यादा आर्थिक उत्पादन नहीं किया और इनमें किसी भी सदस्य के लिए संपदा का संचय कर पाना संभव नहीं था। इस तरह के सरल समाजों में सामाजिक विभेदन जरूर था मगर उनमें सामाजिक स्तरीकरण एक संस्था के रूप में विद्यमान नहीं था।

1-2 mnfodkl h; çfØ;k

एक संस्था के रूप में सामाजिक स्तरीकरण का विकास तब हुआ जब उत्पादन की प्रौद्योगिकियों में बुनियादी बदलाव आया। पशु–पालन और कृषि में आए नवप्रवर्तनों के फलस्वरूप अपेक्षाकृत अधिक जटिल प्रौद्योगिकियों और सामुदायिक जीवन में स्थायित्व समाज के लिए अनिवार्य बन गए। इन अर्थव्यवस्थाओं ने आर्थिक आधिक्य (अधिक उत्पादन) उत्पन्न करना और पशु या अनाज के रूप में संपदा का संचय करना आरंभ कर दिया। खाद्य संसाधनों के सुनिश्चित हो जाने से जनसंख्या में भारी वृद्धि होने लगी। इसके साथ–साथ उत्पादित सामग्रियों, वस्तुओं का लेन–देन और विनिमय भी बड़े पैमाने पर आरंभ हुआ। कालांतर में लेन–देन की युक्तियों का आविष्कार हुआ जो वस्तुओं के मूल्य को समाज के उन वर्गों के विकास में प्रतिबिंबित कर सकती थीं जिनका संपदा और सत्ता पर नियंत्रण अधिक था। अपेक्षाकृत जटिल प्रौद्योगिकियों के

विकास और श्रम विभाजन के फलस्वरूप कालांतर में न सिर्फ विशेषज्ञता प्राप्त समूहों का समाज में उदय हुआ बल्कि शहर और देहात में विभाजन भी उत्पन्न हुआ। सामाजिक संरचना में आई जटिलता के चलते नई उभरती सामाजिक वास्तविकताओं पर सामाजिक नियंत्रण की अधिक विस्तृत संस्थाएं जरूरी हो गईं, जैसे धर्म का संस्थागत स्वरूप, कार्य के विभिन्न स्वरूपों में विशेषज्ञता प्राप्त कर्मियों के स्तर, संस्कृति के विशेषज्ञ, शासक वर्ग इत्यादि। सामाजिक स्तरीकरण संस्था ऐसे ऐतिहासिक क्षण में एक उद्विकासीय संबंधी कार्यात्मक आवश्यकता के परिणाम स्वरूप अस्तित्व में आई।

1-3 l;kth fl)kr

सामाजिक स्तरीकरण के तीन मुख्य संयोजी सिद्धांत हैं। ये हैं स्थिति, संपदा और सत्ता। अब तक कई समाजों का जो समाजशास्त्रीय अध्ययन हुआ है उससे पता चलता है कि उद्विकासीय प्रक्रिया में इन सिद्धांतों के बीच कुछ संबंध है। उदाहरण के लिए, ऐसे समाजों में जिनमें सामाजिक स्तरीकरण की संस्था नहीं थी, जैसे भोजन का संग्रह करने वाले और शिकारी समुदाय, उनमें भी कुछ व्यक्तियों को उच्च सामाजिक स्थान प्राप्त था और उन्हें नायक समझा जाता था। इन समुदायों में ओझा (शामन). आखेट में या सामाजिक, आर्थिक और सुरक्षा के कार्यक्षेत्र में अद्वितीय योग्यता रखने वाले व्यक्तियों को ऊंचा दर्जा दिया जाता था। लेकिन इसके बावजूद इनमें सामाजिक स्तरीकरण की संस्था का आविर्भाव नहीं हो पाया क्योंकि इस प्रकार की व्यक्तिगत विशिष्टता के उद्भव ने सामाजिक विभेदन को जन्म दिया। यह सामाजिक विभेदन योग्यता, सामाजिक–लिंग या समाज में प्रचलित अन्य चिन्हकों पर आधारित था। समाज में सामाजिक स्तरीकरण तभी अस्तित्व में आता है जब सामाजिक श्रेणी का निर्धारण लोगों के समूह के आधार पर किया जाता है, जैसा कि हमारे समाज में सामाजिक श्रेणियां जाति और वर्ग के आधार पर किया जाता है।

1-3-1 lkekftd iafLFkfr

यह सामाजिक स्तरीकरण का सबसे पहला सिद्धांत है। सामाजिक स्तरीकरण की भाषा में सामाजिक प्रस्थिति का अर्थ समाज में लोगों के समूहों का वर्गीकरण समाज में उनकी प्रतिष्ठा या आदर के रूप में उनकी सापेक्षिक स्थिति के आधार पर करना है। प्रतिष्ठा एक गुणात्मक विशेषता है, जो किसी प्रस्थिति–समूह के सदस्यों को जन्म से ही मिलती है। इस तरह का कोई भी गुण जो जन्म से विरासत में मिलता हो, वह प्रदत्त गुण कहलाता है जिसे हम अपने प्रयास से अर्जित नहीं कर सकते। इसलिए सामाजिक स्तरीकरण के सामाजिक–प्रस्थिति सिद्धांत को प्रदत्त का सिद्धांत भी कहते हैं। हमारे देश में जाति सामाजिक–प्रस्थिति समूहों का एक अति उपयुक्त उदाहरण है। जो गुण एक सामाजिक–प्रस्थिति समूह की रचना करते हैं उनका संबंध हमारे प्रयासों द्वारा अर्जित हो सकने वाले आर्थिक, राजनीतिक या सांस्कृतिक सिद्धांतों की अपेक्षा उन मूल्यों और विश्वासों, किवदंतियों और मिथकों से अधिक होता है, जिन्हें समाज में एक अवधि में चिरस्थायी बनाया जाता है।

1-3-2 laink

सामाजिक स्तरीकरण का दूसरा संयोजी सिद्धांत संपदा है। समाज में संपदा तभी उत्पन्न होती है जब प्रौद्योगिकी में उन्नति हो और उत्पादन की रीति में बदलाव आ

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

जाए। जैसे आखेट और भोजन संग्रहण अर्थव्यवस्था से व्यवस्थित कृषि में बदलाव, कृषि–आधारित अर्थव्यवस्था से मुख्यतः निर्माण और उद्योग पर आधारित अर्थव्यवस्था में परिवर्तन। इस प्रकार के परिवर्तनों ने न सिर्फ सामाजिक स्तरीकरण को जन्म दिया बल्कि कालांतर में इन्होंने सामाजिक स्तरीकरण के संयोजी सिद्धांतों को भी बदल डाला। आर्थिक प्रगति से समाज में अधिक संपदा उपजी, संपदा के चिन्हकों का संचय हुआ, जिसके कई रूप थे. जैसे अनाज, पशुधन, धातुएं और खनिज–पदार्थ (चांदी, सोना, बहुमूल्य मणियां इत्यादि) या मुद्रा। इस चरण में आकर जिन समूहों का नियंत्रण आर्थिक संसाधनों और संपदा पर अपेक्षतया अधिक था या जो अधिक संपदा के स्वामी थे उन्हें समाज में उन समूहों से उच्च श्रेणी में रखा जाता था जिनका इन पर नियंत्रण कम था या लगभग नहीं था, जैसे, भूमिहीन श्रमिक या औद्योगिक मजदूर। इसका मुख्य उदाहरण वर्ग पर आधारित सामाजिक स्तरीकरण है।

1-3-3 lÙkk

सामाजिक स्तरीकरण का तीसरा संयोजी सिद्धांत सत्ता है। सामाजिक–स्थिति और संपदा को हम समाज में श्रेणी–निर्धारण के आधार समूह विशेषताओं से स्पष्ट रूप से जोड़ सकते हैं। लेकिन इन दोनों संयोजी सिद्धांतों के विपरीत सत्ता का सिद्धांत अपेक्षतया एक विसारित या बिखरा हुआ गुण है। इसकी वजह यह है कि इसकी प्रकृति अनूठी नहीं है। समाज में उच्च स्थिति वाला समूह या फिर ऐसा समूह जिसके पास संपदा अधिक हो उसके लिए समाज में सत्ता का प्रयोग करना हमेशा संभव रहता है। फिर भी हम इसे विशेषाधिकारों के सिद्धांत से अलग करके देख सकते हैं क्योंकि विशेषाधिकार का सिद्धांत सामाजिक समूह की इस सामर्थ्य पर आधारित है कि वह किस तरह अन्य समूहों को उन कार्यों, मूल्यों और विश्वासों को मानने के लिए बाध्य करता है, जिन्हें तय भी वही करता है। सामाजिक स्तरीकरण की अपनी व्याख्या में जैसा कि मैक्स वेबर कहते हैं सत्ता की अवधारणा इस तथ्य पर आधारित है कि यह उन व्यक्तियों या समूहों को जायज बल प्रयोग करके अपनी इच्छा अन्य समूहों पर थोपने की शक्ति प्रदान करता है। इस अर्थ में राज्य हमारे सामने एक ऐसी संस्था का उत्तम उदाहरण है, जो सर्वाधिक शक्ति या सत्ता रखता है। राज्य को समाज के नागरिकों पर अपनी इच्छा थोपने का परम अधिकार रहता है। शक्ति या सत्ता प्रयोग की वैधता को समूह व्यापक स्तर पर स्वीकार कर लेते हैं, या यूं कहें कि जब यह समाज में संस्थागत बन जाता है तो शक्ति प्रभुत्व में तब्दील हो जाती है। प्रभुत्व को हम वैध शक्ति के रूप में परिभाषित कर सकते हैं। यह शक्ति या सत्ता का सिद्धांत सामाजिक स्तरीकरण की धारणा में भी प्रवेश कर लेता है जब इसके कार्य या सामाजिक फलितार्थों को समाज में चल रही राजनीतिक प्रक्रियाएं प्रभावित करने लगती हैं या फिर राज्य सामाजिक स्तरीकरण को प्रभावित करने में अधिक सक्रिय या प्रत्यक्ष भूमिका अपना लेता है। इसका एक प्रासंगिक उदाहरण हमें सकारात्मक भेदभाव या आरक्षण नीति में मिलता है। इस नीति के तहत भारतीय राज्य ने अनुसूचित जातियों, जनजातियों और पिछड़ी जातियों को सरकारी नौकरियों, राजनीतिक पदों और शिक्षा संस्थानों में आरक्षण दिया है। सामाजिक स्तरीकरण में एक तत्व के रूप में सत्ता की व्याख्या में मैक्स वेबर ने पार्टियों और सत्ता तक अपनी पहुंच को ज्यादा से ज्यादा बढ़ाने में राजनीति, राजनीतिक दलों और उनकी भूमिका को सही आंका है।

vH;kl 1

अपने अध्ययन केन्द्र में अन्य सहपाठियों के साथ सामाजिक स्थिति, संपदा और सत्ता पर चर्चा कीजिए। ये तीनों किस प्रकार एक–दूसरे से जुड़े हैं? अपनी चर्चा के परिणामों को अपनी नोटबुक में दर्ज कीजिए।

1-4 lkekftd Lrj.k d çdkj

मोटे तौर पर सामाजिक स्तरण निम्नलिखित प्रकार से होता है :

1) आयु वर्ग व्यवस्था

2) दास व्यवस्था

3) भूमि के स्वामित्व पर आधारित व्यवस्था

4) जाति व्यवस्था

5) वर्ग व्यवस्था और

6) प्रजाति (नस्ल)/नृजातीय स्तरण।

इनमें से प्रत्येक व्यवस्था की व्याख्या और उसका औचित्य सिद्ध करने के लिए स्पष्ट और ठोस सिद्धांत मौजूद हैं। कुछ मामलो में समाज के एक स्तर से निकल कर दूसरे स्तर में जाने के लिए काफी कुछ लचीलापन है जबकि कुछ मामलों में इसकी गुंजाइश न के बराबर है। सामाजिक स्तरण के विभिन्न प्रकारों के निम्नलिखित वर्णन से मानव समाजों मे स्तरण की प्रमुख विशेषताएँ स्पष्ट हो जाएँगी।

1-4-1 vk;q oxZ 0;oLFkk

फोर्ट्स और ईवान–प्रिचर्ड (1940) ने जिस प्रकार के समाज को ''राज्य विहीन'' कहा है उनमें शासन नहीं होता। वैसे तो प्रधान का कोई पद होता ही नहीं है और यदि होता भी है तो उस पर आसीन व्यक्ति के पास धार्मिक से अधिक रस्मी अधिकार होते हैं। ऐसे समाज में स्तरण आयु के आधार पर किया जाता है। इस तरह का स्तरण कुछ पूर्व अफ्रीकी समाजों की विशेषता है। पूर्व अफ्रीका में मसाई और नन्दी कबीलों में आयु का सिद्धांत प्रमुख रूप से प्रचलित है। वहाँ आयु के अनुसार पद और वरिष्ठता के आधार पर अधिकारों के उपयोग के बीच पूरा तालमेल रहता है। आयु के आधार पर निर्धारित स्तरों को "समवयस्क श्रेणी 7 या एक समान आयु की श्रेणी कहते हैं। एक निश्चित वर्ष अंतराल में जन्मे सभी व्यक्ति (मूलतः पुरुष) एक श्रेणी में आते है। प्रथम समवयस्क श्रेणी में कम से कम छः या सात वर्ष से लेकर अधिक से अधिक 15 वर्ष तक के लोग हो सकते हैं।

अधिकांश मामलो में प्रथम समवयस्क श्रेणी की सदस्यता सामान्यता किशोरवस्था के आसपास समाप्त हो जाती है और नयी श्रेणी प्रारंभ हो जाती है। नयी समवयस्क श्रेणी में जाने के लिए आमतौर पर कुछ रस्में पूरी करनी पड़ती है जैसे सुन्नत या शरीर पर छापे लगवाना। इन रस्मों को पूरा करने के बाद प्रत्येक सदस्य बचपन से निकलकर अपने कबीले का पूर्ण सदस्य बन जाता है। इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति एक समवयस्क श्रेणी का सदस्य होता है और जीवन भर उसी से जुड़ा रहता है। अन्य सदस्यों के साथ वह अगली श्रेणी में चला जाता है। इन समाजों में यह समवयस्क श्रेणियाँ ही

समाज का ढाँचा तय करती है क्योंकि जीवन के हर क्षेत्र से जुड़े लोग इनके सदस्य होते हैं। यही श्रेणियाँ तय करती है कि व्यक्ति किससे विवाह करेगा, कौन–सी जमीन का स्वामी बनेगा या किस समारोह में शामिल होगा, आदि आदि। अतः प्रत्येक स्तर की सदस्यता के आधार पर ही समाज में व्यक्ति की प्रस्थिति या हैसियत तय होती है।

इस व्यवस्था के अंतर्गत अधिकांश समुदायों में एक समवयस्क श्रेणी का सदस्य एक निश्चित आयु स्तर का भी सदस्य होता है। ये स्तर एक दूसरे से बिलकुल अलग होते हैं ताकि एक व्यक्ति एक बार में एक ही स्तर में रहे। सामान्यतः बचपन पार करने के बाद एक व्यक्ति कनिष्ठ योद्धा से वरिष्ठ योद्धा बनेगा। फिर वह कनिष्ठ श्रेणी से वरिष्ठ श्रेणी (बुजुर्ग) बनेगा। योद्धा युद्ध करते हैं और बाहरी हमलों से अपने कबीलों की रक्षा करते हैं जबकि श्रेष्ठी या बुजुर्ग निर्णय लेते हैं और विवाद सुलझाते हैं। वे अपने पुरखों की आत्माओं से भी संपर्क रखते हैं। इस प्रकार संपूर्ण इकाई में समवयस्क श्रेणियाँ विभिन्न स्तरों से गुजरती हैं। अर्थात् एक श्रेणी के सभी सदस्य एक ही साथ एक स्तर से दूसरे स्तर पर पहुंचते हैं। अतः सबकी सामाजिक प्रस्थिति एक साथ बदलती है। हम जिस तरह के समाजों में रहते हैं उनमें अधिकांशतः एक व्यक्ति अकेला बचपन से वयस्क होता है और फिर वृद्धावस्था में पहुँचता है जबकि समवयस्क श्रेणी व्यवस्था वाले समाजों में विशाल श्रेणियों के सदस्यों में सामूहिक रूप से इस तरह के परिवर्तन होते हैं।

सामाजिक स्तरण की व्यवस्था की दृष्टि से आयुवर्ग व्यवस्था से खुले समाज को बढ़ावा मिलता है जिसमें जीवन भर के लिए किसी का कोई निश्चित पद या दर्जा नहीं होता। हर व्यक्ति अपने समय पर बुजुर्ग बनता है और उसे निर्णायक अधिकार मिलता है अतः इस व्यवस्था में स्तरण का प्रारूप बदले बिना ही व्यक्ति में परिवर्तन हो जाता है।

1-4-2 nkl 0;oLFkk

स्तरण की दास व्यवस्था अब समाप्त हो चुकी है। दास प्रथा सन् 1833 में ब्रिटेन में तथा 1865 में अमेरिका में खत्म कर दी गयी थी। इस व्यवस्था का कानूनी ढाँचा बहुत मजबूत था। इस व्यवस्था में मुख्य जोर आर्थिक असमानता पर था जिसके कारण कुछ श्रेणियों के लोगों को कोई अधिकार प्राप्त नहीं थे। वैसे तो एनसाइक्लोपीडिया आफ सोशल साइंसेज (1968) में दासता संबंधी लेख में आदिम, प्राचीन, मध्यकालीन और आधुनिक दास प्रथा में भेद किया गया है, किंतु यहाँ हम दो ही प्रकार की दासता का जिक्र करेंगे – प्राचीन दासता और आधुनिक दासता। प्राचीन दास प्रथा प्राचीन रोम और यूनान में प्रचलित थी। वहाँ आमतौर पर विदेशी युद्धबंदी ही दास हुआ करते थे। आधुनिक दासता में औपनिवेशिक शक्तियों के विस्तार और नस्लवादी विचारधारा ने दास प्रथा को बढ़ावा दिया। इसके अंतर्गत दास अपने मालिक की संपत्ति होता है। उसका न कोई राजनीतिक अधिकार होता है न सामाजिक। उसे काम करते रहने पर मजबूर किया जाता है। अपने दासों की मेहनत के सहारे जिंदा मालिकों ने एक कुलीन वर्ग को जन्म दिया। कहा जाता है कि दास प्रथा में कमी का मूल कारण दास मजदूरों की अकर्मण्यता थी। प्राचीन दास प्रथा कुछ हद तक तक सुधारवादी थी क्योंकि उसमें मालिकों का दण्ड देने का अधिकार सीमित था और दासों को भी कुछ व्यक्तिगत अधिकार थे। रोमन साम्राज्य में ईसाई पादरियों ने भी दास को बन्धनमुक्त कर का समर्थन किया।

1-4-3 Hkfe d LokfeRo ij vk/kkfjr 0;oLFkk

इस प्रकार का सामाजिक स्तरण मध्यकालीन यूरोप के सामंती समाजों में प्रचलित था। इसमें समाज में विभिन्न स्तरों की एक पूरी श्रृंखला होती है जिसमें से प्रत्येक स्तर दूसरे से भिन्न होता है। और कानून तो रीति–रिवाजों के सहारे इस अंतर का सख्ती से पालन किया जाता है। इस व्यवस्था की सबसे बड़ी पहचान यह है कि समाज में व्यक्ति की हैसियत इस बात पर निर्भर है कि उसके पास कितनी जमीन–जायदाद है। हालांकि यह व्यवस्था जाति व्यवथा की अपेक्षा कम रूढ़ थी पर इसमें भी सामाजिक हैसियत विरासत में मिलती थी। हर गुट के कानून सम्मत स्पष्ट अधिकार होते थे। व्यवस्था में सबसे प्रमुख स्थान शाही परिवार और पीढ़ी–दर–पीढ़ी चले आ रहे सैनिक कुलीन वर्ग का होता था। ये कुलीन वर्ग ही जमीन के मालिक होते थे। इन्हीं के समान पंडित–पुरोहितों या कुल गुरुओं का दर्जा होता था जो कुलीन वर्गों से सम्बद्ध होते थे। इनके नीचे व्यापारी और दस्तकार आते थे। शुरू में समूची जनसंख्या में इसका अनुपात बहुत कम था किंतु बाद में इन्हीं के चारों तरफ मध्यम वर्ग पनपने लगा। सबसे नीचे किसानों और मजदूरों का स्थान था। कानूनी अधिकारों और कर्तव्यों के मुताबिक हर गुट की अपनी प्रस्थिति होती थी। इनके बीच के अंतर का प्रमाण यही था कि एक समान अपराधों के लिए अलग–अलग दण्ड दिए जाते थे। जापान जैसे देशों में सामंतवादी व्यवस्था और आधुनिक पूँजीवादी व्यवस्थाओं के साथ संबंध भली भाँति देखे जा सकते हैं।

इन गुटों में श्रम के विभाजन की व्यवस्था थी। कुलीन वर्गों का कर्तव्य था सबकी रक्षा करना, पुरोहितों का धर्म था सबके लिए प्रार्थना करना और आम आदमी का कर्तव्य था सबके लिए अन्न उपजाना। और फिर ये गुट राजनीतिक समूह भी बन जाते थे। अतः यह कहा जा सकता है कि परंपरागत सामंती व्यवस्था के केवल दो ही प्रमुख गुट थे। कुलीन ओर पुरोहित 12वीं शताब्दी के बाद ही यूरोपीय सामंती व्यवस्था में शहरी मध्यवर्ग का तीसरा गुट उभरा। शुरू में जिसकी अलग पहचान थी लेकिन बाद में उसने सारी व्यवस्था ही बदल दी। यदि हम सामंती गुटों को राजनीतिक समूह मानें तो मजदूरों को गुट का दर्जा नहीं दिया जा सकता क्योंकि उनके पास कोई राजनीतिक अधिकार नहीं होते थे।

सामाजिक स्तरण की इस व्यवस्था की सबसे अच्छी व्याख्या मध्यकालीन यरोप में सम्पत्ति आर राजनैतिक सत्ता के स्वरूप तथा उनके बीच के संबंध से हो सकती है।

1-4-4 tkfr 0;oLFkk

भारत में जाति प्रथा की तुलना अन्य प्रकार के सामाजिक स्तरण से की जा सकती है किंतु फिर भी कुछ अर्थों में यह भारतीय समाज में यह अनोखी है। भारत के भूसंबंधों पर आधारित समाज और अग्रवाल, जैन आदि शहरी समुदायों से इनका अनूठा संबंध है। इसके अंतर्गत मलतः सीमित सामाजिक गुट, श्रेष्ठता और हीनता के निश्चित क्रम में व्यवस्थित होते हैं। सामाजिक रूप से स्वीकार्य और उस पर आरोपित स्तरण की दृष्टि से यह सामाजिक स्तरण का सबसे कठोर रूप है।

जाति व्यवस्था की मुख्य विशेषताएँ हैं :

1) ऐसी सामाजिक व्यवस्था की सदस्यता वंश परंपरागत से मिलती है और जीवन–भर निश्चित रहती है,

2) प्रत्येक जाति एक ही गोत्र वाले लोगों का समूह होती है,

3) विभिन्न जातियों के बीच आपसी संपर्क और एक साथ खाने पीने पर प्रतिबंधों से समाज में दूरियाँ बढ़ती हैं,

4) जातिगत नामों और जाति विशेष के परंपरागत रीति–रिवाजों को अपनाते रहने से जातिगत चेतना बढ़ती है, और

5) व्यावसायिक विशेषज्ञता। धार्मिक मान्यताओं के माध्यम से इस व्यवस्था को युक्तिसंगत बनाया गया है।

जाति प्रथा दो स्तरों पर प्रचलित है। एक तो राष्ट्रीय स्तर पर जहाँ पूरे समाज को चार वर्णों में वर्गीकृत किया गया है (ब्राह्मण), (पुरोहित), क्षत्रिय, (राजा), वैश्य (वणिक), और शुद्र (मजदूर) दसरे ग्रामीण स्तर पर, जहाँ स्थानीय समुदायों को "जाति" नामक समूहों में बाँटा जाता है। इस व्यवस्था में किसी परिवर्तन की कोई गुंजाइश नहीं है। विभिन्न संस्कारों और शुद्धीकरण के माध्यम से ही एक जाति के लोग अपने से ऊंची जाति में प्रवेश कर सकते हैं। इस प्रक्रिया में नीची जाति के सदस्य ऊंची जाति के रंग–ढंग और रीति–रिवाज अपनाते हैं और अपनी मूल जाति से सभी संबंध तोड़ लेते हैं।

जाति व्यवस्था की अलग–अलग विशेषताओं को अन्य समाजों में भी देखा जा सकता है जहाँ हर समूह को दूसरे अलग रखने के नियम का सख्ती से पालन होता है। किंतु जाति प्रथा इतने व्यापक रूप में तो भारत में और भारत से बाहर बसे हिंदुओं में तथा भारत में गैर हिंदू समूहों में ही प्रचलित है। जाति प्रथा की मजबूत पकड़ और परिवर्तन की लहर ने भारत में सामाजिक स्तरण के स्वरूप को प्रभावित किया है।

1-4-5 oxZ 0;oLFkk

वर्ग व्यवस्था सामाजिक स्तरण की अब तक वर्णित व्यवस्थाओं से बहुत भिन्न होती है। सामाजिक वर्गों को न तो कोई कानूनी और न ही धार्मिक मान्यता प्राप्त होती है। सभी आधुनिक औद्योगिक व्यवस्थाओं में पूरे विश्व–भर में औद्योगीकरण और शहरीकरण की प्रक्रिया का उपोत्पाद (By Product) माने–जाने वाले ये वर्ग अपेक्षाकृत खुले समूह होते हैं।

सामाजिक स्तरण की वर्ग व्यवस्था का बुनियादी आधार है आर्थिक संपदा और आमदनी पर आधारित सामाजिक तंत्र। रहन–सहन की विभिन्न शैलियों और खपत के विभिन्न रूपों से यह अंतर पूरी तरह स्पष्ट हो जाता है। कहीं–कहीं हमें बातचीत और वेशभूषा के रंग–ढंग में भी अंतर दिखाई पड़ता है। वर्ग व्यवसथा की एक आम पहचान यह है कि इसमें वर्गों के सदस्य अपनी पीढ़ी के भीतर और पीढ़ी के बाहर भी ऊँचे या नीचे हर वर्ग में प्रवेश कर सकते हैं।

वर्गों की संकल्पना का अध्ययन करते समय दो बुनियादी प्रश्न उठते हैं। एक तो यह कि वर्गों की पहचान निश्चित करने के लिए क्या तरीका अपनाय जाए और दूसरे यह कि क्या समान भौतिक सुख सुविधाओं और संपत्ति वाले लोगों को तब भी कई वर्ग का सदस्य माना जा सकता है जबकि दूसरे लोग और वे स्वयं भी अपने को एक सचेत वर्ग न मानते हों। पहली समस्या के बारे में मैक्स वैबर का मत है कि संपदा, शक्ति और जीवन शैली की वर्ग निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका है। अधिकांश

समाजशास्त्री वर्ग निर्धारण के लिए आमतौर पर एक साथ कई तरीके अपनाते है। दूसरी समस्या के बारे में आम सहमति यह है कि वर्ग की परिभाषा करते समय वर्ग चेतना का मुद्दा उसमें शामिल नहीं किया जाना चाहिए। प्रत्येक मामले में अलग–अलग चर्चा करते समय इस मुद्दे पर विचार किया जाना चाहिए।

सामान्यतः अधिकांश समाजशास्त्री इस बात पर सहमत हैं कि प्रत्येक समाज में उच्च, मध्यम और श्रमिक वर्ग होते हैं। इसी प्रकार सुविख्यात समाजशास्त्री डेनियल थॉर्मर ने भारत में ग्रामीण क्षेत्रों में कृषक समाज में तीन वर्गों की पहचान की है। इसे उन्होंने 'मालिक', ''किसान'' और ''मजदूर, वर्ग का नाम दिया। "मालिक'' भूमिका के स्वामी होते हैं, ''किसान'' की अपनी थोड़ी जमीन होती है और श्रमिक वर्ग अथवा मजदूर वे हैं जिनकी अपनी जमीन नहीं होती और वे अन्य लोगों की भूमि पर काम करते हैं। (गुप्ता "संपा." में थॉर्मर डी. 1992: पृ. 265)। समाज में वर्गों की भूमिका और वर्ग विशेष के भीतर तथा विभिन्न वर्गों के बीच के संबधों के बारे में समाजशास्त्रियों ने अलग अलग दृष्टिकोण अपनाए हैं और सामाजिक स्तर के भिन्न–भिन्न सिद्धांतों का विकास किया है। इन सिद्धांतों और दृष्टिकोणों की संक्षिप्त जानकारी हम आपको इकाई के अंत में देंगे।

हम देखते हैं कि औद्योगिक समाजों में सामाजिक वर्ग प्रस्थिति समूहों (Status groups) के साथ रहते हैं। इसी के आधार पर मैक्स वैबर ने इन दोनों के बीच भेद करने और उनके परस्पर संबध को स्पष्ट करने का प्रयास किया। मैक्स वैबर ने बड़े आसान तरीके से इन दोनों के बीच का अंतर स्पष्ट किया। उसकी दलील थी कि सामाजिक वर्गों को इस आधार पर क्रमबद्ध किया जाता है कि माल के उत्पादन और प्राप्ति के ढंग से उनका क्या संबंध है, जबकि प्रस्थिति समूहों को माल की खपत के तरीकों के अनुसार क्रमबद्ध किया जाता है। वर्गों और प्रस्थितियों के बीच के अंतर को समझने का यह ढंग कुछ ज्यादा ही सरल प्रतीत होता है। वैबर के बाद अनेक समाजशास्त्रियों ने वर्ग और प्रस्थिति की धारणाओं का अध्ययन किया है। यहाँ यह बता देना उचित होगा कि औद्योगिक समाजों में सामाजिक स्तरण की प्रक्रिया का विश्लेषण करना बहुत कठिन काम है। विकासशील समाजों के संदर्भ में तो ऐसा करना और भी कठिन है, क्योंकि उनमें सामाजिक वर्ग तो मात्र एक अंग है और प्रस्थिति समूह, जातियाँ या जातियों जैसे समूह, नस्ल और नृजातीय समूह एक साथ मौजूद रहते हैं।

1-4-6 iztkfr ¼uLy½ vkSj u`tkfr;rk

सामाजिक स्तरण का अंतिम प्रकार है नस्ल और नृजाति के आधार पर स्तरण। नस्ल का विचार बहुत नया है जैविक दृष्टि से प्रजाति का अर्थ है ऐसे लोगों का विशाल वर्ग, जिनके शारीरिक लक्षण पीढ़ी–दर–पीढ़ी एक समान होते हैं जैसे – त्वचा का रंग, बाल, चेहरे की बनावट, सिर का आकार आदि। प्रारंभ में नृतत्वशास्त्रियों ने नस्लों का वर्गीकरण करने की चेष्टा की थी, किंतु वे सफल न हो सके, क्योंकि विभिन्न प्रजातियों के बारे में आधुनिक अध्ययनों से मालूम हुआ कि विशुद्ध नस्लें लगभग पूरी तरह गायब थीं। अतः सबसे नयी विचारधारा के अनुसार सभी इंसान एक ही समूह के सदस्य हैं। ताजा आनुवांशिक अनुसंधानों से संकेत मिलता है कि सभी इंसानों में डी एन ए (जीन रेटिंग) के 95 प्रतिशत अणु समान होते हैं और बाकी पाँच प्रतिशत के कारण ही शारीरिक बनावट में अंतर आता है। शारीरिक बनावट और रंग रूप में

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

विभिन्न नस्लों के बजाय एक नस्ल के भीतर भिन्नता पायी जाती है। अतः नस्लों का वर्गीकरण वैज्ञानिक दृष्टिकोण की कसौटी पर निरर्थक सिद्ध हो गया।

समाजशास्त्रियों की नज़र में प्रजाति, लोगों का ऐसा समूह है जिसे समाज दूसरे समूहों की अपेक्षा जैविक दृष्टि से भिन्न मानता है। अतः लोगों को जनमत के आधार पर किसी नस्ल का सदस्य माना जाता है और जनमत समाज में प्रभावशाली समूह की इच्छाओं से संचालित होता है वैज्ञानिक दृष्टिकोण से नहीं। नस्लवादी समाज में, जैसे दक्षिण अफ्रीका में, यह आम धारणा है कि शारीरिक बनावट और रंग रूप का व्यक्ति के चरित्र, बुद्धि और अन्य गुणों तथा क्षमताओं से गहरा संबंध है।

सैद्धांतिक दृष्टि से समाजशास्त्री प्रजातियों के परस्पर संबंधों को स्तरण का रूप मानते हैं। इनमें शारीरिक बनावट के आधार पर संपदा और सत्ता का असमान बटवारा होता है। ऐसी परिस्थितियों में हमें किसी न किसी रूप में नस्लवादी विचारधाराओं की झलक दिखाई पड़ती है।

नृजाति के बारे में कहा जा सकता है कि यदि प्रजाति का आधार, सार्वजनिक मान्यता प्राप्त शारीरिक लक्षण हैं तो, नृजाति का आधार सांस्कृतिक लक्षण हैं। अतः नृजातीय समूह समान (सांस्कृतिक धरोहर सीखी हुई न कि विरासत में मिली हुई) वाले लोगों का साझा समूह है। इस समूह की भाषा, इतिहास, राष्ट्रीयता जीवन शैली समान हो सकती है।

पिछली शताब्दी में बड़े पैमाने पर हुए पलायन के कारण समाजशास्त्रियों को नृजातीय समूहों की स्थिति को जाँचने परखने का अवसर मिला। उदाहरण के लिए शिकागों के समाजशास्त्रियों ने देखा कि नृजातीय समूह कई पीढ़ियों तक लुप्त रहे और फिर उनका संशोधित रूप सामने आया। गैलनर (1964 : 163) ने इस स्थिति का बहुत उपयुक्त शब्दों में वर्णन किया है, "पौत्र वही सब याद रखना चाहता है जो पुत्र ने भूलना चाहा था।'' किंतु समाजशास्त्रियों का यह भी कहना है कि सब समाज में प्रभावशाली समूहों ने कुछ समूहों को, जिन्हें नृजातीय अल्पसंख्यक माना जाता था, सामाजिक सुविधाओं का लाभ उठाने से रोका तो नृजातीय समूहों के समाज में घुलमिल कर लुप्त हो जाने की प्रक्रिया में बाधा पड़ी। इस स्थिति ने नृजातीय संघर्षों को जन्म दिया। संघर्ष की ऐसी परिस्थितियों के कारण ही समाजशास्त्रियों के लिए सामाजिक स्तरण का अध्ययन करना बहुत महत्वपूर्ण और प्रासंगिक हो गया है। इसीलिए सामाजिक स्तरण के विभिन्न सिद्धांतों की भी संक्षिप्त चर्चा करना आवश्यक है। अब हम दो मुख्य सिद्धांतों, प्रकार्यात्मक सिद्धांत और द्वंद्वात्मक सिद्धांतों पर चर्चा करेंगे।

cks/k iz'u 1

1) आयु के आधार पर निश्चित स्तरों को क्या नाम दिया गया है ।

2) दास व्यवस्था की दो मुख्य किस्मों के नाम लिखें।

3) कौन से सामाजिक स्तरण का संबंध भू–स्वामित्व से है?

4) भारत में जाति प्रथा कौन से दो स्तरों पर प्रचलित है।

3) कौन से सामाजिक स्तरण का संबंध भू–स्वामित्व से है?

4) भारत में जाति प्रथा कौन से दो स्तरों पर प्रचलित है।

5) सामाजिक स्तरण के छह प्रकारों में से कौन–सा स्तरण औद्योगिक समाजों में आमतौर पर पाया जाता है?

6) समाजशास्त्र में नस्ल की क्या परिभाषा है?

1-5 vo/kkj.kk vkSj fl)kar lac/kh dqN eqís

सामाजिक स्तरीकरण से जुड़े मुद्दों और सिद्धांतों का झुकाव मूलतः सामाजिक स्तरीकरण और सामाजिक क्रम व्यवस्था के बीच मौजूद संबंध की ओर रहा है। मैक्स वेबर ने समाज की तीनों व्यवस्थाओं में भेद किया। ये हैं सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक। उनके अनुसार सामाजिक स्तरीकरण की बनावट समाज के क्रम' की प्रकृ ति के अनुसार बदलता है। 'सामाजिक क्रम' की प्रमुखता 'प्रतिष्ठा' के मानकीय की सिद्धांत में निहित है और इसके संस्थागत संरचनाएं इसी से प्रभावित होती हैं। यह स्थिति समूहों में विद्यमान रहती है।

पुराने यूरोपीय समाज में प्रचलित सामंतवाद की संस्थाएं, अभिजात वर्ग और विभिन्न रियासतों (एस्टेट) का निर्माण इसके उदाहरण थे। इस प्रकार की सामाजिक व्यवस्था में आनुवंशिक अधिकार और पैतृक संपत्ति और नाना प्रकार के प्रदत्त विशेर कारों और सत्ताधिकारों का प्रचलन था। इधर भारत में विद्यमान समाज का जातिगत स्तरीकरण इस सिद्धांत को प्रतिबिंबित करता है। सह शुद्धि–अशुद्धि के सिद्धांत, पैतृक व्यवसाय और जातिगत विशेषाधिकारों या भेदभाव के अनुमोदित रूपों में काम करती है। यह सजातीय विवाह सिद्धांत में भी झलकता है। वर्ग के विपरीत जाति सामाजिक समुदायों की रचना भी करती है। 'आर्थिक क्रम' तर्कसंगति के मानकीय सिद्धांत और बाजार स्थिति पर आधारित है। यह हित समूहों के रूप में झलकता है। मैक्स वेबर के अनुसार वर्ग बाजार स्थिति की ही उपज है। यह स्पर्धा होता है, इसमें ऐसी सामाजिक श्रेणियां होती हैं, जो समुदायों की रचना नहीं करतीं। वर्ग स्थिति में सामाजिक गतिशीलता अर्जित प्रवीणताओं और योग्यताओं पर निर्भर करती है जो आपूर्ति और मांग के नियमों से संचालित होती हैं। संस्था के रूप में इसकी अभिव्यक्ति बाजारवाद में वृद्धि में देखी जा सकती है। यह बाजार स्थिति को बढ़ावा देता है। समाज का तीसरा क्रम 'राजनीतिक' है। यह 'सत्ताधिकार' की आकांक्षा और उसकी साधना पर आधारित है। इसकी संस्थागत अभिव्यक्ति हमें राजनीतिक दलों और विभिन्न संगठनों के संगठित तंत्र में मिलती है, जिनका रुझान इसके अर्जन में होता है। समाज की राजनीतिक व्यवस्था और इसकी संस्थागत प्रक्रियाओं में अन्य व्यवस्थाओं यानी सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्थाओं तक फैलने की प्रवृत्ति होती है।

1-5-1 oscj dk utfj;k

वेबर की अवधारणा और सिद्धांत संबंधी नज़रिया मुख्यतः व्याख्यात्मक और व्यवस्थापरक है। उनका मानना था कि सामाजिक प्रसंग को समझने और उसकी व्याख्या करने के लिए समाजशास्त्र में सैद्धांतिक विकास 'आदर्श किस्म' की अवधारणाओं के प्रयोग से किया जा सकता है। ये अवधारणाएं वास्तविकता को देखकर मिल अनुभवजन्य आगमन पर आधारित नहीं होती हैं, बल्कि ये ऐतिहासिक व्यक्ति' या ऐतिहासिक घटनाओं का एक कालावधि में किया जाने वाला काल्पनिक चित्रण है जिससे समाजशास्त्री अपनी व्याख्यात्मक समझ से अवधारणाओं की रचना करता है। इसलिए आदर्श किस्म की अवधारणाएं वास्तविक नहीं होतीं हालांकि वे

वास्तविकता की एक निश्चित समझ से ही निकलती हैं। ये आदर्श तो होती हैं मगर मानकीय न होकर (वांछनीय या अवांछनीय, अच्छा या बुरा) चिंतनात्मक या मानसिक रचनाएं होती हैं। वेबर का मत है कि समाजशास्त्रीय सिद्धांतों का व्याख्यात्मक महत्व तो है मगर उनमें सामान्यीकरण की नियम जैसी शक्ति नहीं है। इसलिए सामाजिक स्तरीकरण के उनके सिद्धांत को इसी रूप में लिया जाना चाहिए। उनका सिद्धांत एक कालावधि में सामाजिक स्तरीकरण के सिद्धांतों के प्रकटन की तुलनात्मक समझ पर आधारित है। एक पद्धति और परिवर्तन की प्रक्रियाओं के रूप में सामाजिक स्तरीकरण को समझने में यह सिद्धांत बड़ा ही सहायक रहा है।

1-5-2 }i}kRed utfj;k

कार्ल मार्क्स का 'द्वंद्वात्मक और ऐतिहासिक भौतिकतावाद' सामाजिक स्तरीकरण का एक और स्थापित सिद्धांत है। सामाजिक स्तरीकरण को समझने के लिए बुनियादी अवधारणाओं की खोज में वेबर ने जिस प्रकार क्रम–व्यवस्था' की बुनियादी धारणा का प्रयोग किया है, उसी प्रकार कार्ल मार्क्स ने सामाजिक स्तरीकरण की अवधारणात्मक श्रेणियों के वर्गीकरण के लिए उत्पादन विधि' और 'उत्पादन संबंधों, का प्रयोग किया है। उनके अनुसार उत्पादन की महत्वपूर्ण विधियां इस प्रकार हैंः आदिम, सामंती और पूंजीवादी। ये भेद श्रम–शक्ति के उपयोग की विधियों या उसकी प्रकृति तथा वस्तुओं के उत्पादन में प्रयुक्त होने वाली प्रौद्योगिकी के साधनों पर आधारित हैं। उत्पादन की आदिम विधि की विशेषता यह थी कि उसमें सामूहिक श्रम की विधि अपनाई जाती थी जिसमें आदिम औजार इस्तेमाल होते थे। इस तरह की उत्पादन विधि आदिम भोजन–संग्राही और शिकारी समुदायों में प्रचलित थी। जैसा कि हम कह चुके हैं सामाजिक स्तरीकरण की संस्थाओं का अभी इस चरण पर विकास नहीं हुआ होगा। इसके संस्थागत अंगों का विकास सामंतवाद के उदय के साथ हुआ। इस समय तक संपत्ति और उत्पादन के संसाधनों का संचय होने लगा था। इसके फलस्वरूप समाज में स्तरीकरण आरंभ हुआ जिसके शीर्ष पर सामंतवादी भूस्वामी विराजमान था। यह 'भू–स्वामी भूमि और उत्पादन के अन्य तमाम संसाधनों समेत अपनी रियासत या एस्टेट और उस पर आश्रित लोगों पर अधिकार रखता था जो वस्तुतः बहुत व्यापक था। कृषक, दास और व्यापारी और दस्तकार/कारीगर समाज के अन्य स्तर थे जो इस पद्धति के हिस्सा थे। मगर ये सभी पूरी तरह से उत्पादन के साधनों और श्रमशक्ति पर निर्भर थे जो भूपति के अधिकार में रहते थे। दरअसल, इनमें से अधिकांश सामाजिक स्तर सामंतवादी भूपति की जागीर से जुड़े होते थे। सामंतवाद ने अपने विशिष्ट राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक संस्थाएं विकसित की मगर इनमें से ज्यादातर आनुवंशिक विशेषाधिकारों और पैतृक–प्रभुत्व पर आधारित थीं। सामंत का उत्पादन के साधनों पर नियंत्रण था जिससे उसके और अन्य सामाजिक स्तरों में एक ऐसा संबंध विकसित हुआ जिसका आधार स्थिति अनुबंधन और विशेषाधिकार थे।

c,Dl 1-01

मार्क्स के अनुसार इस व्यवस्था में अंतर्द्वंद्व और तनाव प्रकट या अप्रकट रूप से मौजूद थे। यह अंतर्द्वंद्वात्मक संबंध उस समय मौजूद 'झूठी चेतना' के कारण प्रकट रूप में नहीं था। उदाहरण के लिए सामंत और किसान के बीच के संबंध को किसान शोषणकारी समझने के बजाए उसे एक हितकारी संरक्षण के रूप में लेता था। एक दृ

ष्टिकोण प्रक्रियाओं के बारे में भी विद्यमान है, जिनके माध्यम से संपत्ति सामाजिक स्तरों में समूहों के स्थान का विभाजन करती है।

1-5-3 iwathokn dk mn;

पूंजीवाद के उदय से सामाजिक विकास–क्रम में एक नए दौर की शुरुआत हुई। नूतन प्रौद्योगिकी के विकास और सामाजिक संस्थाओं के माध्यम से चली ऐतिहासिक परिवर्तन की द्वंद्वात्मक प्रक्रिया ने सामंतवाद को लुप्तप्राय बना दिया और इसकी जगह पूंजीवाद ने ले ली। औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप इस समय तक वर्गीय ढांचा पूर्णतः उभर चुका था। वस्तुओं के उत्पादन में कारखाना विधि का विकास, कृषकों और मजदूरों का गांव से शहर की ओर भारी संख्या में पलायन, बाजार के विस्तारित उपयोग से पूंजी का संचय, जिसे परिवहन की नई प्रौद्योगकी ने संभव बनाया और यूरोपीय शक्तियों का औपनिवेशक विस्तार, इन सबने सामाजिक स्तरीकरण की व्यवस्था को ही बदल डाला। सामाजिक स्तरीकरण की इस नई योजना में जिन मुख्य नए वर्गों का उदय हुआ वे थे पूंजीवादी उद्यमी और श्रमिक वर्ग। इसके साथ इन दोनों वर्गों के बीच एक नए किस्म का अति प्रतिद्वंद्वात्मक संबंध उपजा। इस प्रकार के प्रतिद्वंद्वात्मक संबंध के मूल में काम के समुचित घंटे, समुचित पारिश्रमिक, रोजगार और काम की बेहतर स्थितियां, इत्यादि मांगें थीं। मार्क्स के अनुसार संघर्ष की ये शक्तियां प्रतिद्वंद्विता को भी अप्रासांगिक बना कर उसकी जगह समाज में एक समाजवादी व्यवस्था स्थापित कर देती हैं। यह समाजवादी व्यवस्था पूंजी के निजी स्वामित्व और लाभ अर्जन के बिना सामूहिक उत्पादन पर आधारित होगी। किसान और श्रमिक वर्गो द्वारा क्रांति लाने के बाद अनेक देशों में समाजवादी व्यवस्था की स्थापना हुई जैसे सोवियत संघ, चीन, वियतनाम इत्यादि। मगर मार्क्स की मान्यता के उलट पूंजीवाद अभी तक अप्रासंगिक नहीं हो पाया है। हकीकत तो यह है कि पूंजीवाद में एक नया लचीलापन और ऊर्जा देखने में आ रही है। जबकि दूसरी ओर कई समाजवादी अर्थव्यवस्थाएं या तो कमजोर पड़ गई हैं या उनकी जगह पूंजीवादी व्यवस्था या संस्थाओं ने ले ली है।

मगर मार्क्सवादी सिद्धांत का सार सामाजिक स्तरों के निर्माण प्रक्रिया या इसके संरचनात्मक गठन में न होकर सामाजिक व्यवस्था की प्रकृति के इसके बुनियादी तर्क में निहित है। मार्क्स सामाजिक व्यवस्था को ऐतिहासिक भौतिकतावादी परिस्थितियों की उपज मानते हैं। उत्पादन विधियां और उत्पादन के संबंध उन स्थितियों को परिभाषित करते हैं और ये स्थितियां प्रौद्योगिकी में होने वाले नूतन परिवर्तनों को सुलझाने के प्रयासों के कारण निरंतर बदल रही हैं जो कि सार्वभौमिक हैं। इस प्रकार मार्क्स की धारणा के अनुसार सामाजिक व्यवस्था विभिन्न समूहों के बीच परस्पर संबंधों पर आधारित होती है और ये संबंध नैसर्गिक रूप से विरोधी होते हैं जिन्हें सामाजिक व्यवस्था या तंत्र को बदले बिना सुलझाया नहीं जा सकता है। जिस प्रक्रिया के द्वारा सामाजिक व्यवस्था को पलटा जा सकता है उसे हम क्रांति कहते हैं जिसमें औद्योगिक मजदूर और किसान जैसे शोषित वर्ग पूंजीवादी वर्गों के खिलाफ वर्ग संघर्ष में साझा हिस्सा लेते हैं। इस सर्वहारा क्रांति के फलस्वरूप जो सामाजिक व्यवस्था यानी समाजवादी व्यवस्था की स्थापना होती है उसमें सामाजिक–आर्थिक असमानताओं पर आधारित प्रतिद्वंद्विता को जन्म देने वाले सामाजिक–स्तरों के लिए कोई जगह नहीं होती। मगर इसमें वर्ग या सामाजिक स्तरीकरण के बिना कार्य का सामाजिक विभाजन अवश्य होता है। इस प्रकार के सामाजिक स्तरों को 'अविरोधी' कहा जाता है।

1-5-4 MkjgsaM,Q vkSj dkst j

मार्क्सवाद के अलावा सामाजिक स्तरीकरण के समाजशास्त्र में अन्य सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य भी हैं जो समाज में मौजूद अंतर्द्वद्व को एक सार्वभौमिक लक्षण मानते हैं जो उसमें सामाजिक श्रेणियों के रूप में विद्यमान रहता है। राल्फ डारहेंडॉर्फ और लुइस कोजर उन पश्चिमी समाजशास्त्रियों के उदाहरण हैं जो अंतर्द्वद्व की सार्वभौमिकता को सामाजिक स्तरीकरण के हर स्वरूप में स्वीकार करते हैं। लेकिन ये समाजशास्त्री इस द्वंद्व को वर्ग संघर्ष और सर्वहारा क्रांति के सिद्धांत से जोड़ने के बजाए सामाजिक तंत्र में विद्यमान संस्थागत विसंगतियों में देखते हैं।

इन समाजशास्त्रियों के अनुसार द्वंद्व हितों में परस्पर वैमनष्य और ऊर्ध्व सामाजिक गतिशीलता प्राप्त करने के प्रयास में समाज के एक स्तर द्वारा दूसरे स्तरों के ऊपर सत्ताधिकार या शक्ति के प्रयोग से उत्पन्न होता है। इसलिए यह द्वंद्व सामाजिक स्तरीकरण की व्यवस्था की आंतरिक गतिशीलता को दर्शाता हैं। बल्कि यह द्वंद्व स्तरीकरण के पूर्ण प्रतिस्थापन की ओर अभिगमन जैसा कि मार्क्स ने कहा था क्रांतिकारी विधियों से सामाजिक व्यवस्था के परिवर्तन का द्योतक नहीं है। सामाजिक स्तरीकरण के ऐसे सिद्धांत, जिन्हें 'द्वंद्व सिद्धांत' की संज्ञा दी जाती है, ऐतिहासिक भौतिकतावाद के मार्क्सवादी नज़रिए को स्वीकार नहीं करते जिसमें क्रांतिकारी आंदोलनों के माध्यम से सामाजिक विकास–क्रम के नियत चरणों का प्रतिपादन किया गया है। इस द्वंद्व सिद्धांत में सामाजिक क्रम–व्यवस्था की जो धारणा दी गई है वह इसकी द्वंद्वात्मक भौतिकतावादी व्याख्या के बजाए इसके कार्यपरक दृष्टिकोण के ज्यादा नज़दीक है।

1-5-5 çdk;Zoknh fl)kar

सामाजिक स्तरीकरण का प्रकार्यवादी सिद्धांत सामाजिक व्यवस्था के प्रति मार्क्सवादी नजरिए से एकदम अलग है। सामाजिक स्तरीकरण के अध्ययन में यह सिद्धांत विशेष रूप से अमरीकी समाजशास्त्रियों में बड़ा प्रचलित है। कार्यपरक सिद्धांत यह मानकर नहीं चलता कि सामाजिक व्यवस्था में सामाजिक स्तरों की असमनाताओं पर आधारित आत्म–उन्मूलक अंतर्विरोध या द्वंद्व नैसर्गिक रूप से विद्यमान रहते हैं। बल्कि यह सिद्धांत मानता है कि सामाजिक व्यवस्था में आत्म रख–रखाव और आत्म–नियमन की नैसर्गिक क्षमता विद्यमान होती है। यह सिद्धांत यह मानकर चलता है कि समाज और सामाजिक स्तरीकरण समेत इसकी तमाम संस्थाओं की रचना सामाजिक संबंधों के परस्पर–निर्भर समुच्चयों से होती है, जिनमें द्वंद्वों को बांधे रखने और उन्हें सुलझाने की क्षमता होती है। यहां यह सिद्धांत द्वंद्वों को अस्वीकार नहीं करता। यह सिद्धांत सामाजिक व्यवस्था और जीव में समरूपता मानता है जिसके अनुसार दोनों में आत्म–नियमन और स्वदोषहरण की आंतरिक क्रियाविधि पाई जाती है। कार्यपरक दृ ष्टिकोण से सामाजिक स्तरीकरण एक गतिशील व्यवस्था है जिसकी विशिष्टता सामाजिक गतिशीलता और सहमति निर्माण के नियमों का निरंतर पुनर्संयोजन है। यह स्पर्धा और द्वंद्व की भूमिका को स्वीकार तो करता है मगर इसके साथ संस्थागत–कार्यप्रणाली के अस्तित्व में रहने की बात भी करता है। जैसेः समाजीकरण, शिक्षा और लोकतांत्रिक सहभागिता के द्वारा सशक्तीकरण की प्रक्रियाएं। इन प्रक्रियाओं के जरिए सामाजिक गतिशीलता की आकांक्षाएं पूरी की जा सकती हैं और समाज के

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

विभिन्न स्तरों में व्याप्त अवसरों की असमानताओं से उत्पन्न अंतर्विरोधों को एक हद तक सार्थक सामाजिक सहमति से सुलझाया जा सकता है।

सामाजिक स्तरीकरण के अध्ययन में भारतीय समाजशास्त्रियों ने ऊपर बताए 'ए सभी सैद्धांतिक नज़रियों का प्रयोग किया है। मगर भारत में वर्गीय ढांचे और कृषक वर्ग पर जो भी अध्ययन हुए हैं उनमें से अधिकांश में मार्क्सवाद के ऐतिहासिक भौतिकवाद सिद्धांत को प्रयुक्त कर इस सिद्धांत को भारतीय ऐतिहासिक परिस्थितियों के अनुरूप बनाने का प्रयास हुआ है। सामाजिक स्तरीकरण के ग्रामीण और शहरी पद्धतियों के कई अध्ययनों में वेबर के सिद्धांत का प्रभाव रहा है। सामाजिक गतिशीलता, शिक्षा, लोकतांत्रिक सहभागिता और अनुसूचित जातियों/जनजातियों और अन्य पिछड़ी जातियों के पक्ष में सकारात्मक भेदभाव (आरक्षण) की नीतियां, उद्योग और उद्यमशीलता का विकास इत्यादि इन सब शक्तियों से सामाजिक स्तरीकरण में आए बदलावों को आंकने के लिए किए गए अनेक अध्ययनों में जाति, वर्ग और सत्ताधिकार को अवधारणात्मक प्रारूपों को लिया गया है। इन अध्ययनों में विशेष समाजशास्त्रीय रुचि की बात यह मिलती है कि वर्ण–व्यवस्था के अंदर सामाजिक स्तरों की आर्थिक स्थिति, आनुष्ठानिक स्थिति और सत्ताधिकार की स्थिति या हस्ती जैसे कारकों के बीच जो पारंपरिक सर्वांगसमता पाई जाती थी वह सामाजिक गतिशीलता की प्रक्रियाओं और सशक्तीकरण की नीति के कारण टूट गई है। दूसरे शब्दों में ऊंची जातियों को आज उच्च आर्थिक दर्जा या सत्ताधिकार का सिर्फ इसलिए नहीं मिल जाता कि परंपरा के अनुसार वर्ण–व्यवस्था में उन्हें उच्च आनुष्ठानिक दर्जा मिला हुआ है। इस संदर्भ में समाजशास्त्रियों ने आर्थिक दर्जे

को परिभाषित करने के लिए वर्ग, राजनीतिक और जातिगत दर्जे को परिभाषित करने के लिए धार्मिक अनुष्ठान का प्रयोग किया। वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि स्वतंत्रता के बाद पिछले कई दशकों से चली आ रही सामाजिक विकास नीतियों के फलस्वरूप उपजी सामाजिक गतिशीलता ने जाति के आधार पर सामाजिक स्तरीकरण में स्थिति सार' सिद्धांत को तोड़ा है। वर्ग का उदय और जाति व धर्म की जातीय लामबंदी ऐसी नई प्रक्रियाएं हैं जो सामाजिक स्तरीकरण के पारंपरिक स्वरूपों और संस्थाओं को चुनौती दे रही हैं।

1-6 lkjk'k

इस इकाई में श्रेष्ठता और हीनता के आधार पर समाज को श्रेणीबद्ध करने के लिए सामाजिक स्तरण की व्यवस्था का वर्णन किया गया है। इसके साथ ही उसके तीन आयामों, वर्ग, अधिकार और प्रस्थिति की चर्चा की गई है। उसके बाद मानव समाजों में प्रचलित स्तरण के छह प्रकारों का वर्णन है।

मोटे तौर पर सामाजिक स्तरण निम्नलिखित प्रकार से होता है :

1) आयु वर्ग व्यवस्था

2) दास व्यवस्था

3) भूमि के स्वामित्व पर आधारित व्यवस्था

4) जाति व्यवस्था

5) वर्ग व्यवस्था और

6) नस्ल/नृजातीय स्तरण।

सामाजिक स्तरीकरण से जुड़े मुद्दों और सिद्धांतों का रूपरेखा प्रस्तुत किया है।

1-7 'kCnkoyh

जनसांख्यिकी : इसका संबंध जनसंख्या के विभिन्न पहलुओं से है, जैसे, स्त्री–पुरुष, अनुपात, किसी एक लक्षण का वितरण, सकल संख्या इत्यादि।

द्वंद्वात्मक : किसी एक विषय पर दो परस्पर विरोधी दृष्टिकोणों को लेकर उन्हें सार ग्रहण के एक उच्च तल पर सुलझाना।

क्रम–परंपरा : जातियों या समूहों का शीर्ष से नीचे की ओर श्रेणी क्रम।

वर्ण या जाति : एक प्रदत्त समूह जो समुदाय आधारित होता है।

वर्ग : एक उपलब्धि प्रधान हित समूह

सत्ता : एक समूह या समुदाय में किसी व्यक्ति या समूह द्वारा निर्णयों को अपनी इच्छानुसार प्रभावित करने की क्षमता।

स्थिति या दर्जा : प्रतिष्ठा या सम्मान के पैमाने पर समूहों की सापेक्षिक स्थिति के अनुसार उनका समाज में श्रेणीकरण।

1-8 dN mi;kxh iLrd

योगेन्द्र सिंह, सोशल स्ट्रैटिफिकेशन ऐंड सोशल चेंज, नई दिल्ली, मनोहर, 1997

Bottomore T.B.,1965.Classes in Modern Society.George Allen and Unwin

Tumin Melvin M., 1969.Social Stratification. :Prentice Hall of India:Delhi

1-9 ck/k ç'uk dk mÙkj

ck/k ç'u 1

1) आयु के आधार पर निर्धारित स्तरों को "समवयस्क श्रेणी" कहते हैं।

2) दास व्यवस्था की दो मुख्य किस्में हैं – प्राचीन दासता ओर आधुनिक दासता।

3) भू–स्वामित्व व्यवस्था – इस सामाजिक स्तरण का आधार भू–संपत्ति पर व्यक्ति के स्वामित्व से जुड़ा है।

4) जाति प्रथा दो स्तरों पर प्रचलित है। एक तो अखिल भारतीय स्तर पर, जहाँ पूरे समाज को चार वर्गों में बांट दिया गया है – ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र। दूसरे ग्रामीण स्तर पर जहाँ स्थानीय समुदाय ''जाति'' समूहों में बँटे हैं।

5) औद्योगिक समुदायों में सामाजिक स्तरण की सबसे आम व्यवस्था वर्गों पर आधारित है।

6) समाजशास्त्र की दृष्टि से नस्ल ऐसे लोगों का समूह है जिन्हें समाज दूसरों की तुलना में जैविक दृष्टि से भिन्न मानता है।

bdkbZ 2 lkekftd Lrjhdj.k ds vk/kkj

bdkbZ dh :ijs[kk

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 सामाजिक स्तरीकरण क्या है?

2.3 सामाजिक स्तरीकरण के आधार

2.3.1 वर्ग

2.3.2 सत्ता

2.3.3 प्रस्थिति

2.4 सामाजिक स्तरीकरण के अन्य आधार

2.4.1 आयु

2.4.2 प्रजाति

2.4.3 नृजातीयता

2.4.4 लिंग

2.5 सारांश

2.6 शब्दावली

2.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

2.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

2-0 mís';

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- सामाजिक स्तरीकरण के आधारों को समझ सकेंगे;
- चर्चा कर सकेंगे, प्राकृतिक असमानताएँ कैसे सामाजिक स्तरीकरण के आधार बनते हैं।

2-1 çLrkouk

इस इकाई में बताया गया है कि सामाजिक स्तरण क्या है और उसके आधारों या आयामों के जरिए सामाजिक स्तरण के आम सिद्धांतों की चर्चा की गई है। यह भी बताया गया है कि कैसे प्राकृतिक असमानताएँ सामाजिक स्तरीकरण के आधार बनते हैं।

2-2 lkekftd Lrj.k D;k g\

स्तरण समाज को श्रेष्ठता और हीनता के संबंधों के आधार पर विभिन्न दर्जों में बाँटने की व्यवस्था है। विभिन्न दर्जों के बीच यह संबंध कुछ प्रतिमानों से संचालित होते हैं।

विश्लेषण की दृष्टि से स्तरण सामाजिक इकाइयों को उनके मूल्यांकन के आधार पर दर्जा प्रदान करने की प्रक्रिया है। यथार्थ रूप में यह समाज में सुविधाओं और लाभों के अनुपातिक वितरण से संबद्ध है। वास्तव में यह कुछ सिद्धांतों से बंधी एक प्रक्रिया है। समाज में सुविधाओं के वितरण के आधार इन्हीं सिद्धांतों से तय होते हैं। (विस्तृत जानकारी के लिए इकाई 1 देंखे)

2-3 lkekftd Lrj.k d vk/kkj ;k vk;ke

सामाजिक स्तरण के आधार या आयाम, भेद–निरूपण के वे विभिन्न स्तर हैं, जिन्हें किसी दिए गए समाज के लोगों का मूल्यांकन करने के लिए इस्तेमाल किया जाता है। ये आयाम निम्नलिखित हैंः

2-3-1 oxZ

यह सम्पदा स्तर पर अंतर करने से संबद्ध है। इसे आर्थिक भिन्नता भी कहा जा सकता है। समाज में संपदा तभी उत्पन्न होती है जब प्रौद्योगिकी में उन्नति हो और उत्पादन की रीति में बदलाव आ जाए। जैसे आखेट और भोजन संग्रहण अर्थव्यवस्था से व्यवस्थित कृषि में बदलाव, कृषि–आधारित अर्थव्यवस्था से मुख्यतः निर्माण और उद्योग पर आधारित अर्थव्यवस्था में परिवर्तन। इस प्रकार के परिवर्तनों ने न सिर्फ सामाजिक स्तरीकरण को जन्म दिया बल्कि कालांतर में इन्होंने सामाजिक स्तरीकरण के संयोजी सिद्धांतों को भी बदल डाला। आर्थिक प्रगति से समाज में अधिक संपदा उपजी, संपदा के चिन्हकों का संचय हुआ, जिसके कई रूप थे. जैसे अनाज, पशुधन, धातुएं और खनिज–पदार्थ (चांदी, सोना, बहुमूल्य मणियां इत्यादि) या मुद्रा। इस चरण में आकर जिन समूहों का नियंत्रण आर्थिक संसाधनों और संपदा पर अपेक्षतया अधिक था या जो अधिक संपदा के स्वामी थे उन्हें समाज में उन समूहों से उच्च श्रेणी में रखा जाता था जिनका इन पर नियंत्रण कम था या लगभग नहीं था, जैसे, भूमिहीन श्रमिक या औद्योगिक मजदूर। इसका मुख्य उदाहरण वर्ग पर आधारित सामाजिक स्तरीकरण है।

2-3-2 lÙkk

यह समाज में शक्ति के भिन्न–भिन्न वितरण से संबंधित है। यह राजनीतिक, सामाजिक तथा अन्य प्रकार के सत्ता या शक्ति को शामिल करते हैं।

समाज में उच्च स्थिति वाला समूह या फिर ऐसा समूह जिसके पास संपदा अधिक हो उसके लिए समाज में सत्ताधिकार का प्रयोग करना हमेशा संभव रहता है। फिर भी हम इसे विशेषाधिकारों के सिद्धांत से अलग करके देख सकते हैं क्योंकि विशेषाधिकार का सिद्धांत सामाजिक समूह की इस सामर्थ्य पर आधारित है कि वह किस तरह अन्य समूहों को उन कार्यों, मूल्यों और विश्वासों को मानने के लिए बाध्य करता है, जिन्हें तय भी वही करता है। सामाजिक स्तरीकरण की अपनी व्याख्या में जैसा कि मैक्स वेबर कहते हैं सत्ताधिकार की अवधारणा इस तथ्य पर आधारित है कि यह उन व्यक्तियों या समूहों को जायज बल प्रयोग करके अपनी इच्छा अन्य समूहों पर थोपने की शक्ति प्रदान करता है। इस अर्थ में राज्य हमारे सामने एक ऐसी संस्था का उत्तम उदाहरण है, जो सर्वाधिक शक्ति या सत्ताधिकार रखता है। राज्य को समाज के नागरिकों पर अपनी इच्छा थोपने का परम अधिकार रहता है। शक्ति या सत्ताधिकार

प्रयोग की वैधता को समूह व्यापक स्तर पर स्वीकार कर लेते हैं, या यूं कहें कि जब यह समाज में संस्थागत बन जाता है तो शक्ति प्रभुत्व में तब्दील हो जाती है। प्रभुत्व को हम वैध शक्ति के रूप में परिभाषित कर सकते हैं। यह शक्ति या सत्ताधिकार का सिद्धांत सामाजिक स्तरीकरण की धारणा में भी प्रवेश कर लेता है जब इसके कार्य या सामाजिक फलितार्थों को समाज में चल रही राजनीतिक प्रक्रियाएं प्रभावित करने लगती हैं या फिर राज्य सामाजिक स्तरीकरण को प्रभावित करने में अधिक सक्रिय या प्रत्यक्ष भूमिका अपना लेता है। इसका एक प्रासंगिक उदाहरण हमें सकारात्मक भेदभाव या आरक्षण नीति में मिलता है। इस नीति के तहत भारतीय राज्य ने अनुसूचित जातियों, जनजातियों और पिछड़ी जातियों को सरकारी नौकरियों, राजनीतिक पदों और शिक्षा संस्थानों में आरक्षण दिया है। सामाजिक स्तरीकरण में एक तत्व के रूप में सत्ताधिकार की व्याख्या में मैक्स वेबर ने पार्टियों और सत्ताधिकार तक अपनी पहुंच को ज्यादा से ज्यादा बढ़ाने में राजनीति, राजनीतिक दलों और उनकी भूमिका को सही आंका है।

2-3-3 çfLFkfr

यह सामाजिक सम्मान या प्रतिष्ठा के वितरण से संबद्ध है।

सामाजिक स्तरीकरण की भाषा में सामाजिक प्रस्थिति का अर्थ समाज में लोगों के समूहों का वर्गीकरण समाज में उनकी प्रतिष्ठा या आदर के रूप में उनकी सापेक्षिक स्थिति के आधार पर करना है। प्रतिष्ठा एक गुणात्मक विशेषता है, जो किसी प्रस्थिति–समूह के सदस्यों को जन्म से ही मिलती है। इस तरह का कोई भी गुण जो जन्म से विरासत में मिलता हो, वह प्रदत्त गुण कहलाता है जिसे हम अपने प्रयास से अर्जित नहीं कर सकते। इसलिए सामाजिक स्तरीकरण के सामाजिक–स्थिति सिद्धांत को प्रदत्त का सिद्धांत भी कहते हैं। हमारे देश में जाति सामाजिक–स्थिति समूहों का एक अति उपयुक्त उदाहरण है। जो गुण एक सामाजिक–स्थिति समूह की रचना करते हैं उनका संबंध हमारे प्रयासों द्वारा अर्जित हो सकने वाले आर्थिक, राजनीतिक या सांस्कृतिक सिद्धांतों की अपेक्षा उन मूल्यों और विश्वासों, किवदंतियों और मिथकों से अधिक होता है, जिन्हें समाज में एक अवधि में चिरस्थायी बनाया जाता है।

वैसे तो अधिकांश मामलों में यह तीनों आयाम एक–दूसरे के पूरक है। किंतु प्रसिद्ध समाजशास्त्री मैक्स वैबर (1974) ने वर्ग, शक्ति और प्रस्थिति के बीच भेद किया है। वैबर के अनुसार वर्ग एक आर्थिक श्रेणी है, जो "बाजार की स्थिति" की उपज है। जबकि प्रस्थिति पर आधारित समूह प्रतिष्ठा या सम्मान पर टिकी सामाजिक व्यवस्था के अंग हैं। किसी व्यक्ति की प्रस्थिति या हैसियत समाज में उसकी प्रतिष्ठा पर निर्भर होती है। सामाजिक प्रतिष्ठा जीवन की विभिन्न शैलियों से प्रकट होती है। विश्लेषण की दृष्टि से भले ही वर्ग और प्रस्थिति पर आधारित समूहों को स्वतंत्र इकाई माना जाए परंतु वास्तव में वे एक दूसरे से संबद्ध हैं। सत्ता या शक्ति की यह धारणा ही वैबर के सामाजिक स्तरण के सिद्धांत की कुंजी है। सम्पत्तिवान और सम्पत्तिविहीन दोनों ही तरह के लोगों की एक ही परिणति हो सकती है। अतः आर्थिक स्थिति को प्राप्त शक्ति सदैव सामाजिक या कानूनी शक्ति को समान नहीं होती।

ऐसी मान्यता है कि स्तरण का वैबर का सिद्धांत मार्क्स के वर्ग सिद्धांत की प्रतिक्रिया में जन्मा था। हम कह सकते है कि वैबर स्तरण संबंधी विश्लेषण के जनक है। यह विश्लेषण सबसे अधिक अमेरीका में विकसित हुआ। दूसरी ओर मार्क्स स्तरण सिद्धांत

के प्रतिपादक नहीं थे। उनकी राय में उत्पादन के साधनों में मौजूद विरोध और विरोधाभासों का महत्व सबसे अधिक हैं। मार्क्स के वर्गभेद के सिद्धांत के जवाब में ही वैबर ने स्तरण के बारे में अपना सिद्धांत प्रतिपादित किया और स्तरण के आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक आधारों के बीच भेद पर जोर दिया। इस प्रकार वैबर ने सामाजिक स्तरण के अध्ययन को बहुआयामी दृष्टिकोण दिया।

lkp vkj dj 1

अपनी कॉलोनी/गाँव का एक चक्कर लगाइए और मकानों के नमूनों को नोट कीजिए। अर्थात यह देखिए कि अत्यधिक अमीर और शक्तिशाली लोग कहाँ रहते हैं, बाजार कहाँ पर है, अत्यधिक गरीब लोग कहाँ रहते हैं। ''मेरे समुदाय में सामाजिक स्तरीकरण'' विषय पर एक पृष्ठ का निबंध लिखिए। अपने अध्ययन केंद्र के अन्य विद्यार्थियों और अपने शैक्षिक परामर्शदाता से इस पर चर्चा कीजिए।

ck/k ç'u 1

1) सामाजिक स्तरण के तीन आधार क्या हैं? एक पंक्ति में उत्तर दें।

2) वर्ग और प्रस्थिति पर आधारित समूह में भेद कीजिए। तीन पंक्तियों में उत्तर दें।

2-4 lkekftd Lrj.k d vU; vk/kkj

स्तरीकरण एक ऐसी व्यवस्था है जिसके द्वारा लोगों को उनकी संपदा, सत्ताधिकार और प्रतिष्ठा के आधार पर असमान रूप से श्रेणियों में बांटा जाता है और उसी के अनुरूप उन्हें पुरस्कृत किया जाता है। सामाजिक स्तरीकरण के पूर्ववर्ती अध्ययन वर्ग, सत्ता और प्रस्थिति ही अध्ययन करते थे, जबकि प्रजाति, आयु, लिंग/लैंगिकता तथा नृजाति का अध्ययन नहीं होता था। यह हर समाज का एक अनिवार्य अंग है और यह अलग–अलग रूपों में हो सकता है जैसे वर्ग, लैंगिक, प्रजाति और नृजातीयता। सामाजिक स्तरीकरण पर हुए आंरभिक अध्ययनों का मुख्य विषय नृजाति और प्रजाति थे। मगर सामाजिक लिंग सोच (जेंडर) और जातीयता को इनमें पार्श्व मुद्दों के रूप में लिया गया। पर अब जातीयता और सामाजिक लिंग सोच को सामाजिक स्तरीकरण के अध्ययन–विश्लेषण में महत्व मिलने लगा है। यही नहीं, सामाजिक विभाजन के सबसे पहले रूप में वर्ग की जगह अब जातीय स्तरीकरण ले रहा है क्योंकि अब संपति संबंध जातीय श्रेणीकरण से निर्धारित होने लगे हैं। जातीय पुनरुत्थान और द्वंद्वों का विश्लेषण करने के लिए आंतरिक उपनेशवाद का मॉडल प्रयोग किया जा रहा है।

मोटे तौर पर ये निम्नलिखित हैं :

2-4-1 vk;q ox 0;oLFkk

फोर्ट्स और ईवान–प्रिचर्ड (1940) ने जिस प्रकार के समाज को ''राज्य विहीन'' कहा है उनमें शासन नहीं होता। वैसे तो प्रधान का कोई पद होता ही नहीं है और यदि होता भी है तो उस पर आसीन व्यक्ति के पास धार्मिक से अधिक रस्मी अधिकार होते हैं। ऐसे समाज में स्तरण आयु के आधार पर किया जाता है। इस तरह का स्तरण कुछ पूर्व अफ्रीकी समाजों की विशेषता है। पूर्व अफ्रीका में मसाई और नन्दी कबीलों में आयु का सिद्धांत प्रमुख रूप से प्रचलित है। वहाँ आयु के अनुसार पद और वरिष्ठता के आधार पर अधिकारों के उपयोग के बीच पूरा तालमेल रहता है। आयु के आधार

पर निर्धारित स्तरों को "समवयस्क श्रेणी 7 या एक समान आयु की श्रेणी कहते हैं। एक निश्चित वर्ष अंतराल में जन्मे सभी व्यक्ति (मूलतः पुरुष) एक श्रेणी में आते है। प्रथम समवयस्क श्रेणी में कम से कम छः या सात वर्ष से लेकर अधिक से अधिक 15 वर्ष तक के लोग हो सकते हैं।

अधिकांश मामलो में प्रथम समवयस्क श्रेणी की सदस्यता सामान्यता किशोरवस्था के आसपास समाप्त हो जाती है और नयी श्रेणी प्रारंभ हो जाती है। नयी समवयस्क श्रेणी में जाने के लिए आमतौर पर कुछ रस्में पूरी करनी पड़ती है जैसे सुन्नत या शरीर पर छापे लगवाना। इन रस्मों को पूरा करने के बाद प्रत्येक सदस्य बचपन से निकलकर अपने कबीले का पूर्ण सदस्य बन जाता है। इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति एक समवयस्क श्रेणी का सदस्य होता है और जीवन भर उसी से जुड़ा रहता है। अन्य सदस्यों के साथ वह अगली श्रेणी में चला जाता है। इन समाजों में यह समवयस्क श्रेणियाँ ही समाज का ढाँचा तय करती है क्योंकि जीवन के हर क्षेत्र से जुड़े लोग इनके सदस्य होते हैं। यही श्रेणियाँ तय करती है कि व्यक्ति किससे विवाह करेगा, कौन–सी जमीन का स्वामी बनेगा या किस समारोह में शामिल होगा, आदि आदि। अतः प्रत्येक स्तर की सदस्यता के आधार पर ही समाज में व्यक्ति की प्रस्थिति या हैसियत तय होती है।

इस व्यवस्था के अंतर्गत अधिकांश समुदायों में एक समवयस्क श्रेणी का सदस्य एक निश्चित आयु स्तर का भी सदस्य होता है। ये स्तर एक दूसरे से बिलकुल अलग होते हैं ताकि एक व्यक्ति एक बार में एक ही स्तर में रहे। सामान्यतः बचपन पार करने के बाद एक व्यक्ति कनिष्ठ योद्धा से वरिष्ठ योद्धा बनेगा। फिर वह कनिष्ठ श्रेणी से वरिष्ठ श्रेणी (बुजुर्ग) बनेगा। योद्धा युद्ध करते हैं और बाहरी हमलों से अपने कबीलों की रक्षा करते हैं जबकि श्रेष्ठी या बुजुर्ग निर्णय लेते हैं और विवाद सुलझाते हैं। वे अपने पुरखों की आत्माओं से भी संपर्क रखते हैं। इस प्रकार संपूर्ण इकाई में समवयस्क श्रेणियाँ विभिन्न स्तरों से गुजरती हैं। अर्थात् एक श्रेणी के सभी सदस्य एक ही साथ एक स्तर से दूसरे स्तर पर पहुंचते हैं। अतः सबकी सामाजिक प्रस्थिति एक साथ बदलती है। हम जिस तरह के समाजों में रहते हैं उनमें अधिकांशतः एक व्यक्ति अकेला बचपन से वयस्क होता है और फिर वृद्धावस्था में पहुँचता है जबकि समवयस्क श्रेणी व्यवस्था वाले समाजों में विशाल श्रेणियों के सदस्यों में सामूहिक रूप से इस तरह के परिवर्तन होते हैं।

सामाजिक स्तरण की व्यवस्था की दृष्टि से आयुवर्ग व्यवस्था से खुले समाज को बढ़ावा मिलता है जिसमें जीवन भर के लिए किसी का कोई निश्चित पद या दर्जा नहीं होता। हर व्यक्ति अपने समय पर बुजुर्ग बनता है और उसे निर्णायक अधिकार मिलता है अतः इस व्यवस्था में स्तरण का प्रारूप बदले बिना ही व्यक्ति में परिवर्तन हो जाता है।

2-4-2 iztkfr

सामाजिक स्तरण का अंतिम प्रकार है प्रजाति और नृजाति के आधार पर स्तरण। प्रजाति का विचार बहुत नया है जैविक दृष्टि से प्रजाति का अर्थ है ऐसे लोगों का विशाल वर्ग, जिनके शारीरिक लक्षण पीढ़ी–दर–पीढ़ी एक समान होते हैं जैसे – त्वचा का रंग, बाल, चेहरे की बनावट, सिर का आकार आदि। प्रारंभ में नृतत्वशास्त्रियों ने प्रजातियों का वर्गीकरण करने की चेष्टा की थी, किंतु वे सफल न हो सके, क्योंकि विभिन्न प्रजातियों के बारे में आधुनिक अध्ययनों से मालूम हुआ कि विशुद्ध प्रजातियों

लगभग पूरी तरह गायब थीं। अतः सबसे नयी विचारधारा के अनुसार सभी इंसान एक ही समूह के सदस्य हैं। ताजा आनुवांशिक अनुसंधानों से संकेत मिलता है कि सभी इंसानों में डी एन ए (प्रजनन) के 95 प्रतिशत अणु समान होते हैं और बाकी पाँच प्रतिशत के कारण ही शारीरिक बनावट में अंतर आता है। शारीरिक बनावट और रंग रूप में विभिन्न प्रजातियों के बजाय एक प्रजाति के भीतर भिन्नता पायी जाती है। अतः प्रजातियों का वर्गीकरण वैज्ञानिक दृष्टिकोण की कसौटी पर निरर्थक सिद्ध हो गया।

समाजशास्त्रियों की नज़र में प्रजाति, लोगों का ऐसा समूह है जिसे समाज दूसरे समूहों की अपेक्षा जैविक दृष्टि से भिन्न मानता है। अतः लोगों को जनमत के आधार पर किसी प्रजाति का सदस्य माना जाता है और जनमत समाज में प्रभावशाली समूह की इच्छाओं से संचालित होता है वैज्ञानिक दृष्टिकोण से नहीं। नस्लवादी समाज में, जैसे दक्षिण अफ्रीका में, यह आम धारणा है कि शारीरिक बनावट और रंग रूप का व्यक्ति के चरित्र, बुद्धि और अन्य गुणों तथा क्षमताओं से गहरा संबंध है।

सैद्धांतिक दृष्टि से समाजशास्त्री प्रजातियों के परस्पर संबंधों को स्तरण का रूप मानते हैं। इनमें शारीरिक बनावट के आधार पर संपदा और सत्ता का असमान बटवारा होता है। ऐसी परिस्थितियों में हमें किसी न किसी रूप में नस्लवादी विचारधाराओं की झलक दिखाई पड़ती है।

2-4-3 u`tkfr;rk

नृजाति के बारे में कहा जा सकता है कि यदि प्रजाति का आधार, सार्वजनिक मान्यता प्राप्त शारीरिक लक्षण हैं तो, नृजाति का आधार सांस्कृतिक लक्षण हैं। अतः नृजातीय समूह समान (सांस्कृतिक धरोहर सीखी हुई न कि विरासत में मिली हुई) वाले लोगों का साझा समूह है। इस समूह की भाषा, इतिहास, राष्ट्रीयता जीवन शैली समान हो सकती है।

पिछली शताब्दी में बड़े पैमाने पर हुए पलायन के कारण समाजशास्त्रियों को नृजातीय समूहों की स्थिति को जाँचने परखने का अवसर मिला। उदाहरण के लिए शिकागों के समाजशास्त्रियों ने देखा कि नृजातीय समूह कई पीढ़ियों तक लुप्त रहे और फिर उनका संशोधित रूप सामने आया। गैलनर (1964 : 163) ने इस स्थिति का बहुत उपयुक्त शब्दों में वर्णन किया है, "पोत्र वही सब याद रखना चाहता है जो पुत्र ने भूलना चाहा था।'' किंतु समाजशास्त्रियों का यह भी कहना है कि सब समाज में प्रभावशाली समूहों ने कुछ समूहों को, जिन्हें नृजातीय अल्पसंख्यक माना जाता था, सामाजिक सुविधाओं का लाभ उठाने से रोका तो नृजातीय समूहों के समाज में घुलमिल कर लुप्त हो जाने की प्रक्रिया में बाधा पड़ी। इस स्थिति ने नृजातीय संघर्षों को जन्म दिया।

2-4-4 fyax

हर मनुष्य लिंग से स्त्री या पुरुष होता है। अपने सामाजिक व्यवहार में व्यक्ति जो हिस्सा लेता है उसे ही हम 'भूमिका' कहते हैं। इस प्रकार महिला और पुरुष भिन्न–भिन्न भूमिकाएं अदा करते हैं। लिंग–जन्य भूमिका वह भूमिका है जिसे वह अपने लिंग के कारण अदा करता है। कालांतर में इसे लिंग–जन्य भूमिका रूढ़ि प्ररूपों का जन्म होता है। पुरुष प्रधान समाज में पुरुषों की भूमिकाओं को ऊंचा दर्जा या

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

प्रतिष्ठा मिलती है। मगर वहीं महिलाएं जो भी करती हैं उसे हेय दृष्टि से देखा जाता है।

लंबे समय तक यह माना जाता था कि स्त्री और पुरुष के शारीरिक भेद का उनमें विद्यमान भावनात्मक और बौद्धिक भेदों और उनकी शारीरिक क्षमताओं में पाए जाने वाले भेदों से घनिष्ठ संबंध है। हमारी सांस्कृतिक परंपरा में पुरुषों और महिलाओं को कार्य और भूमिकाएं सौंपी गई थी उन्हें भी उनकी शारीरिक क्षमताओं से घनिष्ठ रूप से जुड़ा माना जाता था।

पितृसत्ता का मतलब पुरुष के हितों की साधना करना है। लिंग–जन्य भूमिकाओं का विभाजन कुछ इस तरह से किया गया है कि उसमें पुरुषों का दायित्व उत्पादन तो महिलाओं का दायित्व प्रजनन है। स्त्री अपने घर में जो अवैतनिक अनदेखा कामकाज करती है उसे पुरुषों द्वारा घर से बाहर किए जाने वाले कार्य से तुच्छ समझा जाता है। महिलाओं को कामवासना की दृष्टि से असुरक्षित और कमजोर माना जाता है। इसलिए कई समाजों में उन पर कई किस्म के अंकुश लगा दिए जाते हैं और उनमें प्रचलित रस्मों और वर्जनाओं को उनके जीवन की विभिन्न जैविक घटनाओं से जोड़कर देखा जाता है।

fyx&tU; Hkfedkvk dk tfodh; fl)kr

प्रसिद्ध ब्रिटिश समाजशास्त्री ऐन ओकले के अनुसार 'सेक्स' यानी लिंग एक जैविक शब्द है मगर 'जेंडर' (सामाजिक लिंग सोच) एक सांस्कृतिक शब्द है, जिसका अभिप्राय समाजीकरण के पश्चात व्यक्ति के लिंग से है।

मुरडोक की धारणा को अस्वीकार करते हुए ओकले तर्क देती हैं कि श्रम का विभाजन सर्वव्यापी नहीं है। वह इस तर्क को सिर्फ कोरा मिथक मानती हैं कि महिलाओं जैविकी की दृष्टि से भारी और कठोर काम करने की क्षमता नहीं होती। उनका कहना है कि मां के रोजगार करने से बच्चे के विकास पर कोई दुष्प्रभाव नहीं पड़ता। उनके अनुसार पारसंस ने महिलाओं की ''अभिव्यक्तिपरक भूमिका" और पुरुषों की "साधक भूमिका'' की जो व्याख्या दी वह पुरुषों की सुविधा के लिए है।

समाजशास्त्र के मूर्धन्य प्रवर्तक एमीले दुर्खीम ने कहा कि आदिम समाजों में पुरुष और स्त्री शक्ति और बुद्धिमत्ता में समान थे। मानव सभ्यता की उन्नति के साथ–साथ समाज में नई संहिताएं भी विकसित होती गई जिन्होंने महिलाओं के घर से बाहर काम करने पर अंकुश लगाए। इस तरह स्त्रियां धीरे–धीरे अबला और बुद्धिहीन होती गई।

व्यक्ति के जन्म लेते ही समाजीकरण की प्रक्रिया आरंभ हो जाती है। लिंग–जन्य भूमिकाएं अधिगत यानी सीखे हुए क्रिया–कलाप हैं क्योंकि बच्चों का समाजीकरण इन्हीं भूमिकाओं में किया जाता है। उन्हें इन्हीं भूमिकाओं में ही ढाला जाता है। इसलिए लिंग–जन्य भूमिका का आबंटन एक विशिष्ट क्रिया है, जो असल में अधिगत व्यवहार है। महिलाओं को सदियों से निष्क्रिय भूमिकाओं में ढाला गया है, उनका समाजीकरण किया गया है।

ck/k ç'u 2

1) सही या गलत बताइए।

a) पुरुष और महिलाएं एक दूसरे से भिन्न भूमिकाएं निभाते हैं।

(गलत / सही)

b) सामाजिक लिंग सोच (जेंडर) एक जैविकीय शब्द है।

(गलत / सही)

c) व्यक्ति के जन्म लेते ही उसके समाजीकरण की प्रक्रिया शुरू हो जाती है। (गलत / सही)

2-5 lkjka'k

इस इकाई में श्रेष्ठता और हीनता के आधार पर समाज को श्रेणीबद्ध करने के लिए सामाजिक स्तरण की व्यवस्था का वर्णन किया गया है। इसके साथ ही उसके तीन आयामों, वर्ग, अधिकार और प्रस्थिति की चर्चा की गई है। प्राकृतिक असमानताएँ सामाजिक असमानताएँ का स्वरूप लेती है, जब समाज के सदस्यों द्वारा इनका अर्थ प्रदान किया जाना है। आयु, लिंग और रंग प्राकृतिक असमानताएँ का आधार है। लेकिन अब यह सामाजिक स्तरीकरण का आधार है क्योंकि समाज इनकी कुछ अर्थ से जोड़ा है।

2-6 'kCnkoyh

वर्ग : एक उपलब्धि प्रधान हित समूह

सत्ताधिकार : एक समूह या समुदाय में किसी व्यक्ति या समूह द्वारा निर्णयों को अपनी इच्छानुसार प्रभावित करने की क्षमता।

स्थिति या दर्जा : प्रतिष्ठा या सम्मान के पैमाने पर समूहों की सापेक्षिक स्थिति के अनुसार उनका समाज में श्रेणीकरण।

:f<ç:i : एक निश्चित स्वरूप, विशेषता या छवि

fir`lÙkk : ऐसा कुल जिसका मुखिया पुरुष होता है और जिसमें वंश पुरुष वंशक्रम के आधार पर तय होता है

2-7 dqN mi;ksxh iqLrdsa

Beteille, Andre (ed.). 1976. *Social Inequality*. Penguin Books : London

Tumin, Malvin M. 1969. *Social Stratification*. Prentice Hall of India : Delhi.

2-8 cks/k ç'uksa ds mÙkj

cks/k ç'u 1

1) सामाजिक स्तरण के तीन आधार हैं :

1) वर्ग 2) प्रस्थिति 3) शक्ति

2) वर्ग तो व्यक्ति की आय पर आधारित आर्थिक श्रेणी है जबकि प्रस्थिति व्यक्ति की सामाजिक प्रतिष्ठा पर निर्भर करती है।

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

ck/k ç'u 2

1) a) सही

b) गलत

c) सही

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY